RNI No- 65373/94

चन्द्रताल

अंक 30, अप्रैल 2016 - मार्च 2018

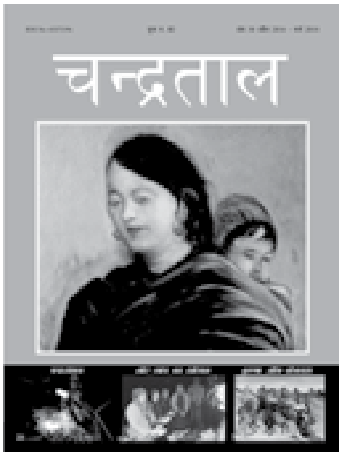

आवरण : स्व. श्री सुखदास जी की पेंटिंग

संस्थापक :
स्वंगला एरतोग,
लाहुल स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु
सोसाईटी रजि० संख्या ल स 42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21,1860

संपादक :
डॉ. छिमे शाशनी

उप संपादक :
बलदेव कृष्ण घरसंगी

प्रकाशक :
सतीश कुमार

डिज़ाईन/ले आऊट :
किशन बोक्टपा

संपर्क :
उप संपादक,
151/1 रामशिला,
अखाड़ा बाज़ार, कुल्लू, हि०प्र० 175101
9816019157 / 9459774779
editor.chandrataal@gmail.com

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा डिजिटल एक्सप्रेस, मनाली से मुद्रित एवं नीरामाटी, ज़िला कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित। संपादक, डॉ. छिमे शाशनी।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

संपादन व प्रवन्धन अवैतनिक।

चन्द्रताल सहयोग राशि :

एक प्रति - रु. 60

इस अंक में:

संपादकीय		2
पाठकीय		3
कविताएं :		
मां बुन लेती है	: कृष्णा	4
मलाई बर्फे	: इशिता गिरीश	5
बदस्तूर इन्सान	: मनीषा शाबला	6
धरती पूछ रही	: मोनिका शर्मा	7
वक्त के पन्ने	: मोहर सिंह धर्मा	7
अपनी भाषा		
स्वङ्लो मीरे चेतुईं	: स्मिता	8
स्वङ्लङ्ज़े डाक अंजः	: यूसुफ	9
कसौटी	: बलदेव घरसंगी	10
कला		
अंतर्विरोध	: सुरेन्द्र शौंडा	12
उन्नीसवीं सदी में चित्रकला		13
कहानी		
सुबह का उजाला	: शेर सिंह	17
भद्दू और मिली	: सिद्धार्थ दवा	22
क्षेत्रीय दृष्टि	: सतीश लोप्पा	23
लोकगाथा		
शौ ए शौ ए राणी जे	: बलदेव रापा	26
लोक संस्कृति		
लोट गांव का खोगल	: रणवीर शाशनी	28
श्रद्धांजलि	: संपादक	34
शायद वह आखरी पहाड़ था	: अजय	35
जीवन का सत्य	: स्व० सुखदास	37
साक्षात्कार (कृष्णा)	: सुनीता कटोच	38
संस्मरण		
मेरा जीवन कहां से कहां तक	: डी० सी० ठाकुर	40
बेचारे......	: डॉ० बी० एस० रावल	42
चिट्ठी की यात्रा में	: गणेश ग़नी	44
इतिहास		
लाहुल : यात्रियों के विवरण	: तोबदन	45
धर्म		
सत्त्वों के दुख निवारण और बुद्ध धर्म	: लालचन्द ढिस्सा	49
संकीर्ण मनोवृत्ति का त्याग	: सीता राम गुप्ता	53
देव परम्परा		
भीम प्रेयसी हिडिम्बा	: तेज राम नेगी	55
बहस		
वृद्धाश्रम : एक बहस	: अश्वनी बोक्टपा	60
दरकते कराहते पहाड़ और जल विद्युत परियोजना	: विनोद कुमार ठबाकु	61
जीवन वृत्त		
पद्मसंभव	: एम० आर० ठाकुर	62
स्वास्थ्य		
स्पीति में हेपाटाइटिस-बी	: डॉ० जे० पी० नारायण	66
समीक्षा		
सत्य से तथ्य तक का सफर	: तुलसी रमण की पुस्तक	68
विविध		
चन्द्रताल का 29 वां अंक	: ञगः छेरिङ	70
कृष्णा ऑन केनवस	: अजय	71

सम्पादकीय

सृजन एक अविरल धारा है, हम उसे बांधे कि वह जाने कहां तक बह जाती है। कितनी लगन, कितनी ऊर्जा और कैसी अविराम तलाश। फिर चाहे वह सुघड़ हो या अनगढ़, लेकिन बेचैनी और चहुंमुखी यात्रा की बदहवासी भी क्या कुछ कम होती है - सर्जना के क्षेत्र में। किसी सर्जक ने सृजन की पीड़ा के बारे लिखा है :-

बहुत दिनों तड़फा था अपने जन्म के लिए.... मेरी भावनाओं की ज़ख्मी.... कोख में.... कोहनियां टिका कर.... नन्हें नाखूनों से खरोंच कर.... लगातार छोटे-छोटे पांवों से.... प्रहार कर.... विवश कर दिया था.... इस ने.... बंध्या.... अभिव्यक्ति को।

रचनाकार द्रष्टा भी होता है स्रष्टा भी। वह जीवन और जगत से प्राप्त अनुभवों को अपने अन्तःकरण की भट्टी में गलाकर तूलिका और शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है और समाज तथा इतिहास के गर्त में से ऐसे प्राणवंत और स्थायी तत्वों को खोज निकालता है, जो हमारे दृष्टिपथ को विस्तार और व्यापकत्व प्रदान करता है ऐसे ही रचनाकारों के सहयोग से 'चन्द्रताल' भी अपनी घाटी के सांस्कृतिक निधियों को प्रकाश में लाने के लिए प्रयासरत है।

इस अंक में स्थायी स्तम्भों के साथ रचनाओं की विविधता भी है, जिन में इतिहास, संस्मरण, साक्षात्कार और स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख और कविताएं हैं।

रेखाओं के शिल्पी प्रख्यात चित्रकार श्री सुखदास गुरुजी हमारे बीच में नहीं रहे, उन के निधन ने चित्रकारिता के क्षेत्र में एक रिक्ति पैदा कर दी है जिस की पूर्ति निकट भविष्य में सम्भव नहीं दिखती। इस अंक में उन के कला के प्रति योगदान तथा व्यक्तित्व पर केन्द्रित सामग्री के साथ संक्षिप्त रचना भी है जो चित्रकार के भावालोक को दर्शाता है। उन का कथन, 'आनन्द निराकार रत्न है और कला उस की प्राप्ति का साधन भी, कला जहां समाज के बाहरी रूप का दर्पण है, वहीं अपनी खोज भी', इसे सम्पूर्ण मानव जीवन का सार कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

'लोट गांव का खोगल' द्वारा विलुप्ति की ओर अग्रसर खोगल त्यौहार की परम्परा का विस्तृत विवेचन और सूक्ष्म विश्लेषण है। इस लेख में लाहुली लोकजीवन में प्रचलित ग्रामोक्तियां भी हैं, जो जनमानस के अनुभव के आधार पर रची एवं गढ़ी गई हैं। इन में जहां एक ओर मनोरंजकता है, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण समाज की साक्षात् अभिव्यक्ति भी।

'लाहुल यात्रियों के विवरण से' यात्रियों द्वारा लिखित एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ माना जा सकता है, जिस के द्वारा लाहुल के अतीत और तत्कालीन परिस्थिति का परिचय मिलता है। 'पद्मसंभव' में तन्त्राचार्य पद्मसंभव का जीवनवृत्त, उन की अलौकिक शक्ति, बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान का विवेचन है। यह लेख सूचनात्मक और ज्ञानवर्धक है। 'सत्त्वों के दुःख निवारण तथा बुद्ध धर्म' में हिन्दू समाज व्यवस्था में जातिगत, सामाजिक, न्यायिक भेदभाव पर प्रकाश डाला गया है वहीं बौद्ध धर्म को वैश्विक संस्कृति का प्रतिनिधि माना है, जहां धर्म, वर्ण, जाति का बन्धन नहीं बल्कि सार्वभौमिक मानवता की भावना है।

'शौ ए शौ ए राणी' घुरे में चम्बा के राजकुमार मूषन वर्मन के जन्म की घटना का वर्णन है। इस में बताया गया है कि वात्सल्य भाव मानव ही नहीं, प्रकृति के प्रत्येक जीव को स्वभाव बदलने के लिए विवश कर देता है। साक्षात्कार में कृष्णा टशी पलमो की लेखन, पेंटिंग में अभिरुचि, कुछ कर गुज़रने की अभीप्सा, एक संवेदनशील कलाकार की कला के प्रति समर्पण भाव द्रष्टव्य है। दूसरों की सहायता से आत्मतुष्टि की भावना सुबह के उजाले की तरह आनन्ददायक होता है, इसी भाव को घटनाओं के माध्यम से 'सुबह का उजाला' कहानी में दर्शाया गया है। 'भद्दू और मिली' लघु कथा में बालमन की संवेदनशीलता और उन के आत्मिक जुड़ाव का अंकन है।

इस अंक में सृजन के स्तर पर स्वीकार्य हर विधा की रचना का समावेश किया गया है। हम सभी रचनाकारों का हृदय से कृतज्ञ हैं। प्रकाशित रचनाओं के बारे में आप की सम्मति और प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

सम्पादक

अन्ततः पाठकों का सच्चा विश्वास फलीभूत हुआ तथा चन्द्रताल का 29 वां अंक जनवरी 2014-मार्च 2016 शरद कालीन छोद्पा, अतीत के झरोखे से, वेणु समागम तथा नीलकण्ठ के आवरण के सुन्दर एवम् मनमोहक तस्वीरों के साथ पाठकों को उपलब्ध हो गया है। उपलब्धता के लिए आभार तथा हार्दिक बधाई 'स्वंगला एरतोग' के ''डिजिटलाईज़ेशन'' के लिए। निःसंदेह सकारात्मक सोच और सोच के अनरूप एक अकल्पनीय एवं अविश्वसनीय तथा निःस्वार्थ पहल- एक अनूठा पहल वास्तव में। पहल में निरन्तरता की अपेक्षा करते हुए पुनः सच्चे मन और सच्चे विश्वास के साथ अगले अंक की प्रतीक्षा में ताकि पाठकों का विश्वास सदैव बना रहे।

टशी अंगरूप गड़फा

सम्पादक छिमे शाशनी ने चन्द्रताल के संपादकीय में जो मुद्दा उठाया है वृद्धों के विषय में उस पर कई कोणों से चर्चा हो सकती है। जैसे यह भी सोचना होगा कि वृद्ध लोगों की दुर्दशा के लिए क्या केवल बच्चे ही ज़िम्मेवार हैं या फिर वृद्ध स्वयं भी।

निःसन्देह चन्द्रताल लाहुल पर केन्द्रित पत्रिका है इसलिए लाहुली समाज के विभिन्न पहलुओं पर यहाँ चर्चा आवश्यक है। बलदेव घरसंगी, सतीश लोप्पा, ठिन्ले नमग्ज़ल, सुनीता कटोच, नवङ उपासक आदि के आलेख इस अंक 29 को समृद्ध करते हैं। परंतु मुझे ञगः छेरिङ की रिपोर्ट ने सबसे अधिक प्रभावित किया। आगे भी इनकी लेखनी पढ़ने को मिलेगी ऐसी उम्मीद है।

कहानी कविता का स्थान तो है ही। यहाँ एक सुझाव देना चाहूँगा कि कहानी और कविता के लिए स्थानीयता की सीमा को तोड़ना होगा और समकालीन साहित्य के कुछ उम्दा पृष्ठ यहाँ दिए जाने चाहिए। किसी बड़े लेखक की आकार में छोटी कहानी चन्द्रताल में आनी चाहिए। वैसे ही कविता भी प्रमुखता से आनी चाहिए। हम कविता का महत्व कम नहीं कर सकते।

धूमिल को पढ़ते हुए अजेय की कविताओं से भी गुज़रता हूँ -

अकेला कवि कठघरा होता है
इससे पहले कि वह तुम्हें
सिलसिले से काट कर अलग कर दे
कविता पर
बहस शुरू करो।

----धूमिल

मुझे धूमिल की कविता पढ़ते हुए लाहुल के बेहद प्यारे कवि अजेय की एक कविता याद आई। एक अंश-

कविताओं के बारे में कविताएँ
वक्त आया है
हम खूब कविताएँ लिखें
कविताओं के बारे में
इतनी कि
कविताएँ हमारी जेबों से निकल
बाज़ार में फैल जाएं।
....
वक्त आया है
कि हम खूब कविताएँ लिखें
ज़िंदगी के बारे में
इतनी कि
कविताओं के हाथ थाम कर
ज़िंदगी के झंझटों में कूद सकें।

- अजेय

अजेय ने यह कविता 15 साल पहले लिखी है और जो उजाला इस कविता में है वो उजाला हमारे जीवन के कुछ अँधेरे कोनों को रोशन करने के लिए काफी है ।

- गणेश गनी

माँ बुन लेती है दुआओं से

कृष्णा

माँ बुन लेती है दुआओं से
चुन-चुन के रंगीन धागों को
पिरोती है एक-एक घर
और जोड़ लेती है हर रिश्ता मज़बूती से
कोई वक्त नहीं ऐसा जो खाली गुज़रा हो
माँ बुनती रहती है अपनों की फ़िक्र
तो कभी अपनों की कद्र
सधी हुई हैं उनकी सिलाइयां
लपक लेतीं हैं धागों को बढ़-चढ़ कर
माँ ने ऐसे ही साध रखा है अपना मन
बिना चूके एक भी बार
हमारी सर्दियां हमेशा गुज़री हैं गर्म
माँ की कलाकारी से सजा हुआ तोहफा
उनके हाथों की खुश्बू
उनके बेशकीमती ज़िंदगी के वक्त का हिस्सा
यह नर्म-गर्म जुराबें
इन्हें पैरों में लगाने से पहले
एक बार दिल से, माथे से भी लगा लूँ
क्योंकि माँ तो बुनती रहती है दुआएं चुन-चुन के
रंगीन धागों से...।

इशिता गिरीश

1 मलाई बर्फ़

फेगड़े के पत्तों पर
मलाई बर्फ़ के स्लाइस खाये हैं ना?
दस-पाँच पैसे में
जी भर!
और कभी-कभी
पाँच रुपए में मुहल्ले भर के बच्चों की दावत
मुहल्ला भी क्या
हर घर में कई सारे बच्चे
पर भीड़ फिर भी बहुत कम-
घर थे ही बहुत कम क्योंकि!!!
पार्वती और हीरा के घर के साथ सटा
आशा-अजू का घर
और फिर हमारा,
जिस के पड़ोस में
वे भूतहा घर
जहाँ से
''बर्फ़ ऽऽऽऽऽ !!!!'' की आवाज़ पर
बच्चे नहीं निकल आते थे,
केवल बब्बू के मनगढ़न्त किस्से बसते थे वहाँ!
तो फिर
तीन घरों के
कुल जमा पन्द्रह बच्चों के लिए
पाँच रुपए की बर्फ थी बहुत अधिक!
बहुत-बहुत ज़्यादा!

2 फेगड़े का पेड़ और मलाई बर्फ़

क्यों काट रहे हो
फेगड़े का झाड़ सा पेड़?
हाँ
अब नहीं बिकती
बर्फ़ इस पर
नहीं आता अब कोई
गली-गली
घर-घर
''मलाऽऽऽऽऽई बर्फ़ेऽऽऽऽऽ !!!!''
की हाँक लगाता-
लकड़ी की संदूकची में
मफलर में लिपटी
सफेद-सफेद, मीठी-मीठी
बर्फ की पिण्डी लिए,
फेगड़े की पत्तियाँ
फिर भी ......
हरी-भरी, आज भी
घोलती है
बर्फ का स्वाद!

3 फेगड़े का पेड़ और कविता

खिड़की से बाहर
फेगड़े के बड़े-बड़े पत्तों पर
कविता नाच रही है
छम-छम-छम!
पत्ते-पत्ते ऊपर
कूदा फांदी करती-
मुझे दिख रही है,
हालांकि वह है
देह विहीन.....
रंग विहीन.....
और इस क्षण-
शब्द विहीन!
फिर भी
फेगड़े के पत्तों का झूलना
झूल रहा है
हिल रहा है!

बदस्तूर इन्सान

मनीषा शाबला

कौन हूँ मैं? मैं हूँ कौन?
क्या हूँ मैं वह अपूर्ण कहानी?
लिखा करती तब तक,
शब्दों को हृदय से सींच,
हो न जाती जब तक शक्त - वह कहानी।

मैंने सुना कहानी! हाँ कहानी!
तो मैं हुई एक कहानी?

ज़रा ठहरो!
कहानी - जिसे लिखता कलमकार,
बाँधे रखता अपनी कलम से।
पर नहीं लिखता मुझे कोई,
और ऐसी कहानी मैं तो नहीं।

तो कौन हूँ मैं? मैं हूँ कौन?
क्या हूँ मैं वह कठिन रास्ता?
भाता नहीं है तो मुझे,
चुभता है पैरों में, जूते चीरता है,
पर चलना पड़ता हैः दुःखद!
पर चलना पड़ता हैः दुःखद।

मैंने सुना दुःखद!
तो अस्तित्व हुआ मेरा दुःखद?

ज़रा ठहरो!
दुःखः जो सुख न हो,
और जिसके गुज़रने का ज़रा दुःख न हो,
मेरे दुःख की दशा किसी सुख से कम नहीं,
तो ऐसा दुःख मैं तो नहीं।

आखिर कौन हूँ मैं? मैं हूँ कौन?
शायद वह इंसान,
पथरीले रास्ते चलना, पत्थर चुभोना,
है जिसके सुःख - दुःख की दःशा?
पर मुलाज़िम वह भी होना चाहता है।

तो क्यों है पुकारे समाज सिर्फ भाई को?
मुझे क्यों नहीं माँ???
''यही है तेरा जीवन, बेटी।।।''
जवाब ऐसा कि सुलगा गया विद्रोह!
भाई से कम मैं भी तो नहीं।
भाई से कम मैं भी तो नहीं।

तो हुई मैं विद्रोही?
तो क्या सुनती हूँ-
''बदमिज़ाज़ है यह लड़की!!''
खुसर फुसर करते, सुना मैंने उन्हें कहते,
जिनसे मिज़ाज़ी न करना है मेरी बदमिज़ाज़ी।

हाँ हूँ मैं एक लड़की,
पर बदमिज़ाज़ मैं तो नहीं।
मिज़ाज़ मेरा भी है, लिहाज़ मुझे भी है;
पर बदमिज़ाज़! बदमिज़ाज़ मैं तो नहीं।

तो कौन हूँ मैं? मैं हूँ कौन?
शायद एक इंसान, एक बदस्तूर इंसान,
न वह कहानी, न वह रास्ता,
सिर्फ एक इंसान, एक बदस्तूर इंसान।

नहीं है जिसे व्यर्थ ही कहते जाना
पर नहीं है जिसे बस सहते जाना;
न अबला हूँ, न सबला हूँ,
न देशी, न विदेशी,

हाँ हूँ मैं एक लड़की,
पर बदमिज़ाज़ मैं तो नहीं।
मिज़ाज़ मेरा भी है, लिहाज़ मुझे भी है;
पर बदमिज़ाज़! बदमिज़ाज़ मैं तो नहीं।

तो कौन हूँ मैं? मैं हूँ कौन?
शायद एक इंसान, एक बदस्तूर इंसान,
न वह कहानी, न वह रास्ता,
सिर्फ एक इंसान, एक बदस्तूर इंसान।

नहीं है जिसे व्यर्थ ही कहते जाना
पर नहीं है जिसे बस सहते जाना;
न अबला हूँ, न सबला हूँ,
न देशी, न विदेशी,
न सागर हूँ, न दरिया हूँ;
सिर्फ एक बदस्तूर इंसान हूँ।।।

गांव शुलिङ, लाहुल।

धरती पूछ रही

मोनिका शर्मा

धरती पूछ रही
धरती पूछ रही ये क्या हो रहा है,
मैं सबको देती हूँ आशियाँ,
मुझ पे ही अत्याचार हो रहा है,
मुझे माँ की परिभाषा देते हो,
और मेरे ही सीने में खंजर भौंकते हो,
धरती पूछ रही ये क्या हो रहा है,
मैं सबको देती हूँ आशियाँ,
मुझ पे ही अत्याचार हो रहा है,
मैं देख रही हूँ इक पागल,
जिसकी लुट चुकी है आबरू,
अपने अश्रुओं से सी रही है अपना आँचल,
अपने लहू से धो रही है अपनी देह
कभी अपने ज़ख्मों को देख
मुस्कुरा देती है,
तो कभी अपने नैनों से,
मोती गिरा देती है,
मैं पूछती हूँ कि क्या मिलेगा इंसाफ़,
इंसाफ़ उस कटघरे में,
जहाँ सैकड़ों ग्राहक उमड़े पड़े हैं,
उसे इस जन्म में इंसाफ़ मिलेगा,
या फिर अगले जन्म का इंतज़ार करना पड़ेगा,
धरती पूछ रही ये क्या हो रहा है,
मैं सबको देती हूँ आशियाँ,
मुझपे ही अत्याचार हो रहा है!!

शमशी, कुल्लू।

वक्त के पन्ने

मोहर सिंह धर्मा

ज़िन्दगी में रोज़ हम
वक्त के नए पन्ने पलटते रहे
कभी इस छोर, कभी उस छोर
मगर नहीं पकड़ पाए कोई छोर
इस कशमकश में खो दिए
बहुत से नाते-रिश्ते
अर्थ दिखता था सिर्फ
कभी दिखता नहीं था अपनापन
आज आहत है, न जाने क्यों चाहत है
कचोटता मुझे बार-बार
कहता फिरता मुझे हर बार
अर्थ नहीं रिश्ते भी कमाना सीखो
किसी को गले लगाना भी सीखो
न जाने क्यों आज टूट सा गया हूँ
अपने आप से छूट सा गया हूँ
जिनको कभी याद किया नहीं
झुक कर कभी सलाम किया नहीं
आज उनसे मिलने को बेकरार सा हूँ
ज़िन्दगी का यह फलसफा तो चलता ही रहेगा
नए रंग, नए चाल में ढलता ही रहेगा
पर वक्त के जो पन्ने इस ज़िन्दगी में हैं
वो कोरे ही रहे
उलझी आकृतियों के साथ।

जंजैहली (मण्डी)

स्वङ्लो मीरे चेतुञीं

स्मिता

स्वङ्लो मीरे चेतुञीं - 2
धक्तेज़ी मीरे अपि लेकि तोतोर
फ्वा त टीरा अलुञीं
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

इच्च्ः जुटे सङ चि ल्हज़ि तरचि- 2
भत्ते तूखा अतञीं
साथे तूखा अतञीं
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

स्वर्गो घाड़े हेन्दू स्वङ्ला- 2
सदमा तु ठारी
नर्क ल्हज़िमि ततोर ए
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

इच्च्ः बेन्डि ल खड़े मकेषु- 2
भरनम प्रोजेक्ट लेपोतो
धोतिङ अऊंखा योञीं
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

खास तबाही भरनम शोतो- 2
भत्ते तीऊ अन्द्रेग शोतो
अऊंखा इबि धोतिङ
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

मुर्ति, पेन्हाड़रे कारचे योरे- 2
हेन्दु ला आ-टटु कारची
धुट्रो ध्याड़ा अपतो
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

छिट्रो पवित्तर हेन्दु संगम- 2
दूला चरचिमि ततोर ए
ज़ी ए अऊंखा योञीं
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

बुट-झट्टरे इच्च्ः ल केषुमा- 2
ना र्ही-दङरे केषोरे
ना त्रेईं घ्वणरे शोर
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

ज़ेइ तुङ्मिरिङ अनजल मकेष्तो- 2
केषोञीं योञिं तिस्कर तङ
छना षिङ्मी धोतिङ
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

अप मेमे तङ य्होज़िमि शर्ज़िमि- 2
दू घरबार केषु मा
अतिङ खन्ड्रि धोतिङ
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

र्ही ए दङरिङ दुन्ज़ा मीरे- 2
फो त उम रङ्गी ल्हाञीं
देखा न्वेखा खाञीं
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

म्होड़े-म्होड़े मीतु मिली भगत शु- 2
हेन्दु गाणि मकेट्रि
हेन्दिङ ए ल्हेई लेपि
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

पंच परधानरे केरे पक्का शूञीं- 2
दी तिङ NOC थराञीं
ची ए कुचेला थराञीं
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं

वोट रें ता केरे खड़े ल्हसी- 2
द केतु गूड़िङ ज़िन्दगी
सोठेक्ट्रि आ छङज़ी
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं

स्वङ्लो मीरे चेतुञीं
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं
स्वङ्लो मीरे चेतुञीं।।

स्वङ्लङज़ि डाक अंजा

तोग् ग्यु मिन्ज़े
नगरङ -ज़े डाक अंजः
एनो बाड़े बेचे़ य्हङतचे-ऊ
गप्पा चे़सि ततु
र्हिऊ ख्वाङ -ड्डुङ -ज़े
गोह चुड़ः तचे-ऊ
गप्पा चे़सि ततु
डाक लोक्वि़रङ नगरो
घाड़िरे थेचि़ अचा़ अतिरे
आँऊ शिनापिरङ बाड़े य्हचा़ बङ्ज़-तेर
तोग् ठुड्डु-पुष चुम्ज़ा तोतोर
आँऊ घाड़ितुङ बाड़ेतर य्होज़ःतेईं
तोग् शुनेः शुचि तोतोर
छुज़ोम-रे कुर्चा़ मेचमिरे
नलकङ शिनम तचे कट्ठे मश्वातोर
दङरेतिङ आईतलः शेई ल्हेई उड्रा-रे पुङम-तोर
पर दु उड्रःतु गांणि ल्हज़ाड़ अरलः मतोर
रेल्मो एचतर बङरेतु ठारि
मसीनःचे़ ल्हेप्चतोर
नगरो मेचमिरे आईत ला
र्ही दङरेतङ दोई य्वातोर
गढ़ बेन्डि आईत ला बहिक्पि लेकि तोतोर

पर नगर-ओ थलेचे़ खड़े दु गोह्
धोतर बेचे़ फो-आ शुनेः शुचि तो
अपिल बेचे़ दोई थशःतु भेइ
दोऊ पंङमल मीचे़ खोरिक्वि़ चुकःतोर
अपिल दि गोह्-बेन्डि मकेषोकु
चेतु गेला मकेषिगः
मकेषुरे दि घाड़िरे
दि र्ही दंङ
बणः बुटः
दिकु खड़े-त गेलः खड़े
केई अपि तरपोना
दु घाड़ितु थल्ज़े
दु गोह् बेन्डि ऊ थल्ज़े
गे ठट केषा तोतोग्
डाक पढ़िके
दि टंगा-ढभ्भा
जिमि-जागा
कटु-पटुरे
दि नौकरी
दि ज़स-तुङ
दीतु बिचङ सूले-सूले गिवि
डाकङ चे़सि गप्पारे भत्ते
भुदड़े तङफि लेकि तोतोर!

मूल हिन्दी कविता : सुनीता कटोच
चङ्सो भाषे अनुवाद : यूसुफ

अति आधुनिकतावाद के बाद के दौर में सोशल मीडिया का हमारे व्यक्तिगत व सार्वजनिक जीवन में भूमिका : लाहुली सन्दर्भ में

बलदेव कृष्ण घरसंगी

इक्कीसवीं शताब्दी में सोशल मीडिया संचार की दुनिया में खेल बदलने वाली घटना बन चुकी है। यह इंटरनेट प्रयोग करने वालों की संख्या के कारण सम्भव हो सका है जो शुरुआती दौर में कुछ लाख से अब खरबों में पहुंच चुकी है। दो क्लिक और तीन सेकंड ही लगता है जब कोई अपने आल्टर ईगो को वास्तविक रूप में दूर दुनिया तक पहुँचा सकता है। लगभग विशुद्ध वास्तविक होने की भावना का संचार जनित हो जाता है जब इसके प्रयोग करने वाले को लगता है वह जो चाहे उसे अपलोड कर सकता है, चाहे वह विषय वास्तविक हो या नहीं। सोशल मीडिया ने एक ऐसी दुनिया का गठन कर लिया है जहाँ आपके चाल-चलन भौतिक पारस्परिक क्रिया से शासित नहीं होता है, इसलिए इसके असली प्रभाव को भांपना कठिन है। वास्तविकता को एक दुनिया या चीज़ों में स्थित में परिभाषित कर सकते हैं। हमारी दुनिया ऐसी है जो भौतिक विज्ञान द्वारा शासित होती है न ही मनुष्य के आदर्शवाद द्वारा इसमें छेड़छाड़ होती है। हालाँकि नई संचार प्रणाली ने एक आभासी दुनिया को विकसित करने का प्रयास किया है जहाँ पर उसको लगता है कि वह जो चाहे वह कर सकता है।

आज लाहुली समाज भी इससे अछूता नहीं है। लाहुली मूल के विभिन्न व्यक्तियों और समूहों ने अपने फेसबुक पेजिज़ व ग्रुप्स बनाए हुए हैं। इनमें व्यक्तिगत व लाहुल से सम्बन्धित विषयों को समय-समय पर उठाया जाता रहता है। इनमें सांस्कृतिक, राजनैतिक, पर्यावरण व व्यक्तिगत विषयों पर चर्चा करने की कोशिश की जाती है। जैसा कि हम जानते हैं कि लाहुली मूल के लोग पूरे भारत वर्ष व अन्यत्र विश्व में भी फैले हुए हैं तो उन पर इसका प्रभाव वैश्विक स्तर पर जो देखने को मिलता है उस से भिन्न नहीं है क्योंकि संचार व्यवस्था के माध्यम से उनका परिवेश भी वही है, परन्तु यहाँ पर इस विषय को लाहुली मानसिकता की पृष्ठभूमि में उजागर करने का प्रयास भर है।

उत्तर आधुनिकतावाद का दौर जिसे इसके आलोचक लगभग समाप्त मान रहे हैं तो अब वह 'तारतम्यहीन', 'मीमांसा विरोध', 'अति विवरणात्मकता', 'विरोध तत्वमीमांसिक उपस्थिति' 'आपसी आत्मार्थकता की शाक्ति', प्रवचन का गठन' व 'अर्थ की विविधता' विषयों को त्याग कर मुख्यतः अब 'गतिशीलता का अध्ययन', 'आचार-विचार', 'वैश्वीकरण' व 'अंतर्राष्ट्रीयता' और अन्य वह विषय जो उत्तरआधुनिकतावाद से प्रेरित रहे हैं जैसे कि ''इतिहास'', 'प्रतिनिधित्व' और 'राष्ट्रीय सीमाएँ इत्यादि वर्तमान युग को समझने हेतु पुनः समझ विचार कर उठाए गए हैं। एम्यूनल लेविनॉस द्वारा इनकी विशेषताओं को ''अध्य-नैतिक चिंताओं'', 'पारिस्थितिक अनिवार्यता का दवाब', और 9/11 व 26/11 की घटनाओं द्वारा उठाने का प्रयास हुआ है। इसके अतिरिक्त इनके शब्दकोश में अब ''वैश्वीकरण'', ''हरित राजनीति'', ''अन्तर्राष्ट्रीयता'', ''साईवर टेररिज़्म'', ''व्यक्ति विशेष'', ''अन्तः अनुशासनात्मता'', ''जीनथेरेपी'', ''बायो-टेकनोलॉजी'' आज सांस्कृतिक बहसों में मुख्य रूप से उपस्थित रहते हैं और सम्भवतः, उत्तर आधुनिकतावाद से कहीं न कहीं प्रेरित व प्रभावित रहते हैं।

आज फेसबुक पर लाहुली लोग अधिकतर व्यक्तिगत पोस्ट के अतिरिक्त सांस्कृतिक, पारिस्थितिक संरक्षण विषयों पर केन्द्रित रहते हैं। परन्तु इन पोस्टों में समीक्षात्मकता का अभाव रहता है तथा अधिकतर पोस्ट कहीं से उठा कर अपने अन्तरंग मित्र (alter ego) की इच्छाओं का सम्प्रेषण भर रहता है, मसलन अगर आप पारिस्थितिक संतुलन की बात करते हैं तो यह एक ही कारण पर टिका नहीं होता अपितु बहुत से कारण इसको प्रभावित करते हैं। परन्तु अन्तरंग मित्र की सन्तुष्टि या विषय को सीमित दायरे में देखने से इसके बहुआयामी कारणों से अज्ञानतावश प्रेषित एक अध-पका पोस्ट थोपने जैसा लगता है। क्लाईमेट चेन्ज, ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव स्थानीय से लेकर वैश्विक हो गया है और अमूमन अपलोडेड पोस्टों में इसके मुख्य कारण वृक्ष कटान, बड़े हाइड्रो प्रोजेक्ट्स, डेम निर्माण को ही माना जाता है, लेकिन हम इसके दूसरे कारणों को भी वैश्विक स्तर पर क्रियान्वयन में हैं जैसे थर्मल एनर्जी, वाहन प्रदूषण, अत्यधिक भवन निर्माण, जनसंख्या वृद्धि, खाद व कीटनाशकों का बृहद स्तर पर अवैज्ञानिक प्रयोग, मोनो क्रोपिंग, काफो (CAFO) के अन्तर्गत लाखों टन का गोबर पैदा करके जीवंत पानी के रास्तों को प्रदूषण आदि भयावह रूप धारण कर रहे हैं, लेकिन किन्हीं कारणों से या फिर विभिन्न राष्ट्रीय सरकारों द्वारा निजी स्वार्थ हेतु इन पर कोई कार्यवाही नहीं होती है। पूरा विश्व जनसंख्या विस्फोट के कगार पर खड़ा है जो कि प्राकृतिक स्रोतों के क्षरण का मुख्य कारण है, के प्रति सभी आंख मूँद लेते हैं परन्तु जो कारण आपके हित में होते हैं जैसे न्यूक्लीयर के स्थान पर थर्मल एनर्जी यूज़ पर क्लीन एनर्जी साधनों का विरोध, रोहतांग सुरंग बने पर डेम निर्माण न हों यद्यपि पारस्थितिक असंतुलन में सभी बराबर के भागीदार हैं। व्यावसायिक फसल उत्पादन हेतु अवैज्ञानिक कीटनाशकों का भरपूर प्रयोग हो परन्तु मिट्टी व फ्लोरा प्रदूषण रहित चाहिए। वृक्ष न कटे, क्रशर न लगे, नदी के तटों से छेड़-छाड़ न हो पर अपना मकान तीन मंज़िल का ही बने और वह भी लाहुल व कुल्लू दोनों स्थानों पर हो। अब तो रोहतांग सुरंग खुलने पर लाहुल में पर्यटन की अपार सम्भावनाएं बढ़ेंगी तब हम होटल इत्यादि हवा से बनाएंगे? क्या आपने आकलन किया है कि पूरे लाहुल में होटल निर्माण में कितने पेड़ों की बलि चढ़ेगी? लेकिन हमारा क्या, यह पेड़ तो कुल्लू में कटेंगे या फिर आयातित लकड़ी प्रयुक्त होगी,

ईंट, सीमेंट व लोहा पंजाब से आएगा व ट्रकों की आवाजाही बाहरी ट्रक करेंगे। तो क्या पारिस्थितिक संतुलन का विषय भी तेरा-मेरा या स्थानीकृत है कि वैश्विक? इसे हमें समय रहते समझना होगा। खाली फोटो पोस्ट करने से कुछ नहीं होगा। किसी का आल्टर ईगो (alter ego) सामूहिक ज़िम्मेदारी से बड़ा नहीं हो सकता। पोस्टों को लाईक करने की होड़ में कई बार हम जाने बिना ऐसे पोस्टों को भी लाईक करते हैं जो न्यायाधीन (sub-judice) होते हैं और मानहानि के दायरे में आते हैं लेकिन हम बिना सोचे समझे इन्हें लाईक करना नहीं भूलते। लाहुली समाज काफी हद तक एक शिक्षित समाज है इस तरह सोशल मीडिया का उपयोग संचार माध्यम के रूप में लाभदायक होते हुए भी उस दुधारी तलवार की तरह है जो दूसरों को आहत करने के साथ ही आपको भी आहत कर सकती है। कोई भी व्यक्ति, ग्रुप, समाज व राष्ट्र में रहने वालों को बहुत ही सावधानी व तथ्यों का आकलन करने के बाद ही अपनी प्रतिक्रिया देनी चाहिए। इसका राष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव आप संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव में देख चुके हैं। हर पोस्ट पर अन्धविश्वास करना अपने लिए ही नहीं अपितु व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के लिए हानिकारक होता है, जैसे कि आजकल भारतीय प्रजातंत्र चुनावों में देख सकते हैं। एक गलत पोस्ट किसी पार्टी विशेष के चुनाव परिणाम पर असर डाल सकता है, यह हमने देखा है। क्योंकि सोशल मीडिया अभी नया है, इस तरह इसके दुष्परिणाम पर या इसके इस्तेमाल के खिलाफ कानून बनने की प्रक्रिया भी लगातार चल रही है। तो यह नहीं कहा जा सकता कि संचार की स्वतन्त्रता को बनाए रखने के लिए आप कुछ भी करने के लिए सक्षम हैं। इस तरह आज हमें इसका उपयोग अपने आल्टर ईगो से बाहर आकर इस माध्यम का उचित उपयोग व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के लिए करना होगा।

सोशल मीडिया अपने आप में बुरा नहीं है और इसकी विविधता आश्चर्यजनक है लेकिन मनुष्य ने इसमें अन्तर्निहित सशक्तता को अपने एक ऐसे व्यक्तित्व में परिवर्तित कर दिया है जहां उसने भौतिक परिवेश से निकल कर अपने लिए एक वर्चुअल वर्ल्ड का निर्माण कर लिया है। कम्प्यूटर की दुनिया में नित नए तकनीकों के विस्तार व आगमन से तकनीक व मनुष्य शरीर के बीच के रिश्तों को बड़ा आयाम मिल रहा है। ''साईबर स्पेस'', ''साईबर्गेज'', ''साईबरनेटिक्स'' उत्तर आधुनिकतावाद संस्कृति के सशक्त माध्यम बन गए हैं और ''उत्तर मानव'' शरीर के आगमन के उर्वर अनुमान बन गए है। आर्थर व मेरी लुईस क्रोकर इस विमर्श की अग्रिम पंक्ति में रहे हैं। उनका तर्क मुख्यतः यह रहा है, ''शरीर अब 'यहां' नहीं रहा। यह कि नए शिल्प शास्त्र और उत्तर प्रबोध दर्शनों के विकेन्द्रक प्रभावों के द्वारा इसे स्थानापन्न कर दिया गया है। प्रायः भविष्योद्घोषवाद के स्वरों को ध्वनित करते हुए, लोग एक ऐसे युग को आहूत करते हैं जिस में शरीरों ने विभिन्न परिपथों से स्वतंत्र शक्ति पर अपना स्वामित्व खो दिया है।''

''क्योंकि हम फौकाल्ट की उस भविष्यवाणी के काले चिन्ह के नीचे रहते हैं कि पूंजीवादी शरीर विलग हो चुके अहम के रिक्त स्थान में उत्पन्न या अवतरित होने वाली है, 'विघटन में परिमाण,' भाषा से जिस का पता चलता है विचार धारा से विदीर्ण होता है और आधुनिक शक्ति क्षेत्र के सम्बन्धात्मक परिपथता से आक्रांत होता है।'' (आर्थर क्रॉकर एण्ड मेरी लुईस क्रॉकर, थीसिस ऑन द डिसअपियरिंग बॉडी इन द हाईपर-मार्डन कण्डीशन) इन स्थितियों से लाहुल भी अछूता नहीं रह सकता क्योंकि हमारा परिवेश स्थानीय होते हुए भी इस माध्यम की उग्रता के कारण वैश्विक हो चुकी है, खासकर हमारे दैनिक आचार-व्यवहार में इसकी संलिप्तता अब जग ज़ाहिर है।

''आभासी यथार्थ (virtual reality) उन राहों, तरीकों के अन्वेषण का एक और स्थान है जिसमें ''शरीर'' और उसकी क्षमताओं को और बढ़ाया जा सकता है। शिल्प शास्त्रीय विकास घटनाओं सम्बन्धी एक नए उत्तर औद्योगिक समाज और 'सूचना समाज' के सम्बन्ध में समाजशास्त्रीय तर्कों द्वारा प्रेरित हैं, जो सामाजिक और कल्पना लोक की हवा पर काबिज़ है। कुछ सिद्धांतवादी यह तर्क देते हैं कि ये प्रौद्योगिकियां मूलपाठ विषयकता और हमारे मूल पाठ विषयक प्रयोगों / अभ्यासों / क्रियाकलापों को पुनर्परिभाषित करते हैं और सांस्कृतिक संरचना के व्यापक पुनर्गठन का अंग हैं। उत्तर संरचनावादी रूप में मार्क पोस्टर की कृति का यह मानना है कि सूचना की यह नई प्रणाली संचार को सांकेतिक / पूर्वात्माल्क आदान-प्रदान के रूप में समानुरूपित करता है और 'विस्तारण द्वारा' व्यक्तिनिष्ठता और सामाजिक सम्बन्धों के सांचे को प्रभावित करता है।''

इस तरह मीडिया द्वारा जो भी पोस्ट किया जाता है वह आवश्यक नहीं कि सच ही हो परन्तु आज समाज में वही मेटर करता है। सोशल मीडिया द्वारा अपने आपको देखने के प्रति और उस पर आपके बारे में क्या कहा गया है, का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। सामाजिक व्यवहार में लोग उन बातों की गहराई में जाना ही नहीं चाहते हैं जो वह देखते हैं और तय कर लेते हैं कि जो उन्होंने पढ़ा व देखा सुना है वही सच है। इस तरह सोशल मीडिया में तथ्यों को तोड़ने मरोड़ने की क्षमता है कि वह लोग आपके बारे में क्या सोचते हैं, को प्रभावित करता है तथा इसके लिए हम लोग ही उत्तरदायी हैं क्योंकि, लोग असत्य वस्तुस्थिति को सुनने के प्रति आश्वस्त हैं क्योंकि यह उन्हें रुचिबद्ध (interested) बनाए रखता है। अगर इस व्यवहार से बचना है तो हमें बदलना होगा, क्योंकि सोशल मीडिया में जो परोसा जाता है उस पर हमारा नियन्त्रण नहीं है, परन्तु आपके पास ताकत है कि इसे स्वीकार करें या न करें। आप जो देखते व सुनते हैं, पर नियन्त्रण नहीं रख सकते पर हम क्या विश्वास (believe) करते हैं, पर हम नियन्त्रण रख सकते हैं। अतः उत्तर आधुनिकतावाद के इस दौर में हमें इस माध्यम पर नियन्त्रण रखना होगा। यह तभी सम्भव है जब आप किसी भी विषय को बिना खंगाले उस पर भरोसा न करें तथा इस माध्यम की व्यापकता को समझने की कोशिश करें, तभी आप इस माध्यम की सार्थकता को व्यक्ति, समाज व राष्ट्र हित में प्रयोग हेतु नैतिक अधिकार के भागीदार बन सकेंगे। ■

अंतर्विरोध

स्थूल रूपों की सूखी, उघड़ती परतों के बीच
अस्तित्व की पहेली बांचता

उन्नीसवीं सदी में चित्रकला

आधुनिक चित्र कला का प्राक्-इतिहास

देज्यूनेर सूर ल'हर्बे

(चित्र-1)

आधुनिक कला के संभावित प्रारम्भ बिन्दु को दर्शाने के लिए भिन्न-भिन्न तिथियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। सम्भवतः सर्वाधिक मान्य तिथि 1863 है, पेरिस में सेलोन देस रिफ्युज़ेस (Salon des Refuse's) का वर्ष, जहां एदुआर्द मेनेट ने पहली बार अपनी देज्यूनेर सूर ल'हर्बे दिखाया। (चित्र 1) लेकिन अन्य एवं इस से भी पूर्व की तिथियां सुझाई जा सकती हैं, अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी (The Exposition) वर्ष 1855, जब कॉर्बेट ने द पेन्टर्ज़ स्टूडियो को प्रदर्शित करने के लिए अलग दीर्घा (Pavilion) का निर्माण किया; 1824, जब अंग्रेज़ प्रकृति चित्रकार (landscapists) जॉन कॉन्टेबल और रिचार्ड पार्क्स बोनिंगटन ने अपने चमक-दमक भरे, प्रकृति से रंगों का सीधा अध्ययन (brilliant, direct color studies from nature) का प्रदर्शन पेरिस सेलोन में किया, या वर्ष 1784 भी जब जे० एल० डेविड ने अपना ओथ ऑफ द होरेतिआई (Oath of the Horatii) (चित्र 2) पूर्ण किया और युरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में नव-शास्त्रीय आन्दोलन (neo-classic movement) ने वर्चस्व पूर्ण स्थिति ग्रहण करना आरम्भ किया।

आधुनिक कला के विकास के लिए इन में से प्रत्येक तारीख का अपना महत्व है, लेकिन कोई भी पूर्ण रूपेण नव-आरम्भ को निश्चित तौर पर इंगित नहीं करता है क्योंकि ऐसा नहीं हुआ था कि अचानक ही एक नई दृष्टि प्रकट हो गई हो, सौ वर्ष की अवधि में धीरे-धीरे यह कायाकल्प हुआ था। प्रश्रय के प्रतिमानों में, फ्रांसीसी आकादमी की भूमिका में, कला प्रशिक्षण की पद्धति में, समाज में कलाकार की स्थिति में तथा, विशेषकर कलात्मक साधनों और विषयों में कलाकार की अभिवृत्ति - विषय वस्तु, अभिव्यक्ति, और साहित्यिक अंश, रंग, रेखांकन और कलात्मक कर्म की प्रकृति और उद्देश्य की समस्या में परिवर्तन आदि अनेक अलग-अलग घटनाक्रमों को इस ने मूर्त रूप दिया।

चैत्रिक अन्तराल पहली विचारणीय वस्तु है। नव शास्त्रवाद को कई बार संकलनवादी और अमौलिक शैली कहा गया है। जिसमें पुनर्जागरण और बरोक कला के शास्त्रवाद (classicism) को चिरस्थाई बना दिया, एक ऐसा शास्त्रवाद जो अन्यथा खत्म हो

(चित्र-2) ओथ ऑफ द होरेतिआई

(चित्र-3) 'स्कूल ऑफ एथेन्ज़'

जाता। फिर भी नव-शास्त्रीय कला में आधारभूत पुनर्जागरण परम्परा का पहली बार प्रतिकार किया गया - चैत्रिक अन्तराल के संगठन को चलाने में परिप्रेक्ष्य मन्दता (Perspective recession) का प्रयोग। वास्तव में, यह तर्क दिया जा सकता है कि उन अभिवृत्तियों (attitudes) को आकार देने में डेविड का कार्य निर्णायक था जिन्होंने, अन्ततः बीसवीं-सदी की अमूर्त कला का मार्ग प्रशस्त किया। दरअसल, डेविड और उसके अनुयायिओं ने रेखीय और परिवेशीय परिप्रेक्ष्य (atmospheric perspective) पर आधारित चैत्रिक संरचना की परम्परा का परित्याग नहीं किया था। वे अपने इस विचार से आबद्ध (wedded) थे कि चित्रकला शास्त्रीय उभारी मूर्ति कला / भित्ति-मूर्तिकला (relief sculpture) का ही रूपान्तरण था; उन्होंने परिवेशीय प्रभावों को गौण कर दिया, रेखीय आकृतियों पर बल दिया, अपनी आकृतियों को चित्रफलक (picture plane) के आर-पार चित्र वल्लरी (frieze) के रूप में व्यवस्थित किया और विभिन्न युक्तियों, जैसे कि ठोस दीवार, तटस्थ रंग वाला पृष्ठ क्षेत्र, या किसी अभेद्य छाया आदि के द्वारा चैत्रिक गहराई को बन्द कर उस फलक को बलाघात (aaccentuated) प्रदान किया। परिणाम, जैसा कि 'द ऑथ ऑफ द होरातिआई' (the oath of the Horatii) में और इस से भी स्पष्ट रूप से 'द डेथ ऑफ सोक्रॅटीस' में देखा जा सकता है, एक अग्रमंच (roscenium) के पीछे संकरे मंच के साथ-साथ अकृतियों को चित्रित करने से यह प्रभाव पैदा हुआ है; इस का अस्तित्व रेखीय और परिवेशीय परिप्रेक्ष्य के सिद्धान्तों के अनुसार रचित चैत्रिक अन्तराल (Pictorial space) में उन की स्थिति की अपेक्षा अन्तराल (space) में मूर्ति-प्रतिरूपण के भ्रम के कारण अधिक है।

परिप्रेक्ष्य अन्तराल (Perspective space), यह गहराई को दर्शाने का एक तरीका है जिस के विरुद्ध डेविड प्रतिक्रिया दे रहा था, ने युरोपीय कला पर पूर्व के चार सौ वर्षों तक आधिपत्य किया। इस का आधार 15वीं सदी के आरम्भ में पूर्णतः साधे गए, एकल बिन्दु

(चित्र-4)

परिप्रेक्ष्य और 14वीं सदी की कला के प्रक्रितिवाद का तार्किक परिणाम था। एक एकल दृष्टि बिन्दु मान ली गई, और दृश्य फलक (Visual place) की ओर सम कोण बनाती हुई सभी रेखाओं को क्षितिज पर एक ही विलय बिन्दु पर मिलाया जाता। इन गणितीय-दृश्य सिद्धान्तों का आविष्कार फिलिप्पो ब्रुनेल्लीषी (Filippo Brunelleschi) ने 1420 से पहले किया था; उन का प्रयोग मेसाशिओ (Masaccio) द्वारा 1425 में अपने भित्रि-चित्र (Fresco) 'द होली ट्रिनिटी' में किया गया, और 1435 के करीब लिओनी बतिस्ता अलबर्ती (Leone Battista Alberti) द्वारा लिखा गया। 15वीं सदी के कलाकारों ने छत के शहतीरों और

(Checkered) फर्शों (Floors) के मिलापी रेखाओं (Converging lines) द्वारा सुव्यवस्थित गहराई (Organized defth) का भ्रम पैदा करने के लिए, स्थापत्य अन्तराल (Architectural space) में आकृतियों का आकार तय करने के लिए, और आंखों से दूर होती जाने वाली चीज़ों को घटता हुआ आकार देने के लिए परिप्रेक्ष्य (Perspective) का प्रयोग किया। दृष्टि बिन्दु को क्षितिज से लगती रेखा के दाएं या बाएं, या इस के ऊपर या नीचे बदल कर विशदीकरण (Elaborations) विकसित किए गए; परिवेशीय परिप्रेक्ष्य घटती हुई रंगों की विषमता और दूरस्थ में प्रकाश और अन्धेरे (Light and Dark) का परिमाण (Values) के द्वारा गहराई के भ्रम को और बढ़ा देता था। इन युक्तियों के द्वारा चित्रकारों ने मनुष्य और उस के परिवेश के प्रकृतिवादी चित्रण पर नियन्त्रण प्राप्त किया।

16वीं सदी में अन्तराल की पुनर्जागरण संकल्पना (Renaissance Conception of space) रफाएल (Raphael"s) के 'स्कूल ऑफ एथेन्ज़' जैसी कृतियों में एक और बड़े चरमोत्कर्ष पर पहुंचा (चित्र-3), जिन में विषय-वस्तु की श्रेष्ठता को भवन निर्माण अन्तराल (Architectural space) की भव्यता के द्वारा स्थापित किया गया। 17वीं सदी में पिएत्रो द कोर्टोना (Pietro da Cortona) (देखें चित्र-4) जैसे महान अलंकर्त्ताओं के हाथों में परिप्रेक्ष्य चित्रण (Perspective painting), अन्तराल संरचना (Space Organization) के वृहत् स्वरसंगति की रचना में भवन निर्माण और मूर्तिकला से मिल कर एक अभिव्यंजक उपकरण बन गया। प्रयोग धर्मिता के दो सौ वर्षों में सीखी गई परिप्रेक्ष्य और अग्रसंक्षेपण की प्रत्येक भ्रमवादी युक्ति का आश्रय लिया गया। भ्रमवादी अन्तराल (Illusionistic space) का खुलते जाना 18वीं सदी के अन्त तक जारी रहा। गहन-परिप्रेक्ष्य के साथ केनेलेट्टो और गुआर्दी (Canaletto and Guardi) के 'वीनीशियन सीन्ज़' (Venetian scenes) तथा गियोवानी बतिस्ता तीपोलो (Giovanni Battista Tiepolo, चित्र-5) के छत के उल्टान के अलंकरण उल्लेख्य हैं। केवल नव-शास्त्रवाद (Neo-Classicism) का उत्कर्ष होने पर 18वीं सदी के अन्त में अन्तराल के विस्तारण चित्रण पर विराम लगा, यह इसे कठोरता के साथ सीमित करने की वाञ्छा थी।

19वीं सदी के पूर्वार्ध में डेविड के अनुयायी अमूर्त रेखा (Abstract line) में दर्शाई गई आदर्श विषय वस्तु की कला पर उत्तरोत्तर बल देने की चिन्ता में रहते थे। नव-शास्त्र वाद (Neo-classicism) और स्वच्छन्दता वाद (Romanticism) दोनों ही इस दुनिया से ; पूर्व, अफ्रीका या दक्षिणी सागर के प्रभावों ; या, शास्त्रीय पुरातनता वाले कला और साहित्य से व्युत्पन्न कहानियों की दुनिया, मध्य युग और पुनर्जागरण से आहूत यथार्थ की ओर उड़ान थे। इन दो शैलियों (Schools) के बीच अन्तर अंशतः विषय विशेष के चयन को

(चित्र-5)

लेकर था; शास्त्रवादियों का स्पष्टतः झुकाव पुरातनता की ओर था और स्वच्छन्दता वादियों का मध्य काल या विदेशज पूर्व की ओर (Bxotic East)। शताब्दी जैसे-जैसे बढ़ती गई, यह अन्तर भी धूमिल होता गया; क्योंकि शास्त्रवादी इन्ग्रेस (Ingres) ने खास तौर से प्राच्य दासियाँ, और स्वच्छन्दता वादी डेलाक्रोइक्स (Delacroix) बहुधा यूनानी पुराण कथाओं की ओर मुड़ गया। विषय वस्तु के प्रति रवैये (Approach) में तो और भी समानता है। डेविड के होरातिआई रोमानी ढंग से भावुक बनाते हैं जो शास्त्रीय यूनानी मूर्ति कला परम्परा की अपेक्षा रेसीन (Racine) की रंग मंच परम्परा के अधिक निकट है। डेलाक्रोइक्स का अपने कर्मशाला में विचार मग्न, माईकल एंजीलो (Michelangelo, brooding in his studio) का डेविड के, अपने बच्चों की मौत का शोक मनाता ब्रूटस (David's Brutus mourning the death of his sons) के साथ नज़दीकी आध्यात्मिक सम्बन्ध है।

19वीं सदी में शास्त्र वाद और स्वच्छन्दता वाद के बीच स्पष्टतम अन्तर संभवतः मूर्ति रूपाकार (Plastic form) और रंग प्रयोग के तकनीकों में देखा जा सकता है। नवशास्त्र वादियों ने एक समान सतह प्रभाव प्राप्त करने के लिए ग्लेज़ चित्रण (Glaze painting) की पुनर्जागरण परम्परा को जारी रखा, जब कि स्वच्छन्दता वादियों ने रूबेन्स, रेम्ब्राण्ट और रोकोको के दानेदार/संरचनात्मक सतह

BHAGWAN SINGH & CO.

Manali, Distt. Kullu, HP Ph: 9816042798

A company which is always ready to serve the farmers of Lahul valley and the cultivators of the country with quality and variety seeds of potato and also ensures the growers and users of seeds with better long term returns

को पुनर्जीवित किया। नव-शास्त्रवाद ने चित्र कला में संतुलित अग्रता (Balanced frontality) के सिद्धांत को उस अंश तक स्थापित किया जो कि उच्च पुनर्जागरण या पुसिन (Poussin) के शास्त्रीय बरोक (Classical Baroque) से भी आगे निकल गया। स्वच्छन्दतावाद विषमता, गहराई में विकर्णीय मन्दता (Diagonal recession in depth), और अनिश्चित, परिवेशीय-रंग प्रभावों (Indefinite, atmospheric- coloristic effects) की ओर लौट गया जो कि आन्तरिक कल्पना की अभिव्यंजना के लिए अधिक उपयुक्त था।

19वीं सदी के पूरे प्रथम भाग में शास्त्रीय, स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी चित्र कला का विश्लेषण करते समय तकनीकों के प्रति अभिवृत्ति या स्थानिक संरचना (Spatial organization) से इतर बहुत सारे अन्य कारकों को भी ध्यान में रखना होगा। डेविड और उसके अनुयायिओं का नव-शास्त्रवाद फ्रांसीसी क्रान्ति और मान ली गई स्टोइक (Presumed stoic) और प्राचीन रोम की गणतान्त्रिक नैतिकता/सदाचार (Republican virtues) के दार्शनिक आदर्शों से सम्बन्धित नीतिवादी (Moratistic) विषय-वस्तु में निरत रहे। फिर भी प्राचीन चित्र कला में पर्याप्त पूर्व-आदर्श के अभाव के कारण सच्चे अर्थों में शास्त्रीय कला की सिद्धि कर पाने से चित्रकार बाधित रहा। यद्यपि, प्राचीन मूर्तिकला की प्रचुरता रही थी, और इस प्रकार यह आश्चर्यजनक नहीं है कि डेविड के 'द ऑथ ऑफ द होरातिआई' जैसे चित्र सीमित मंच के भीतर उच्च भित्तियों में मूर्तिकृत आकृतियों के साथ प्रतिस्पर्धा करें।

आकृतियों की उपदेशात्मक अभिवृत्ति, कलाकार की अपने विषय के प्रति अभिवृत्ति से उत्पन्न होने वाली लगभग अमूर्त साधारणीकरण (abstract simplifiction) के लिए मंच सादृश्य को खास तौर से उपयुक्त बना देती है- 18वीं सदी के राजशाही विस्तारण को गणतान्त्रिक साधारणीकरण और आत्म संयम (austerity) के द्वारा स्थानापन्न करने का जान बूझकर किया गया प्रयास।

डेविड के महानतम चित्रों में से एक, 'द डेथ ऑफ मेरात' (The death of Marat) में उल्लेख किए गए सभी तत्त्व मौजूद हैं- स्थानिक संपीड़न, मूर्ति अलंकरण, अति नाटकीकृत विषय। लेकिन यह हमें डेविड की यथार्थवादी चित्रण की शक्ति की भी याद दिलाता है, जो 18वीं सदी के फ्रांसीसी प्रतिकृति चित्रकारों (Portraitists) और 19वीं सदी की कोर्बेट और उस के अनुयायिओं की यथार्थवादी परम्परा के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है और, यद्यपि 1793 से पहले चित्रित, 'मेरात' (Marat) भी 19वीं सदी के दूसरे और तीसरे चतुर्थांश में स्वच्छन्दता वादी आन्दोलन में व्याप्त हो जाने वाले अधिक वीभत्स तत्वों का पूर्वाभास देता है। ■

सुबह का उजाला

शेर सिंह

लगभग चौबीस घंटे की यात्रा में सर्वोदय एक्सप्रेस द्वारा अहमदाबाद से अंबाला छावनी पहुंचते-पहुंचते दोपहर हो गई थी। पिछले कल अहमदाबाद के कालूपुर स्टेशन से ट्रेन ठीक समय पर ही चली थी। दूरी के हिसाब से कुछ समय लगना, लेट होना स्वाभाविक था। अंबाला से चण्डीगढ़ हमें बस से ही यात्रा करनी पड़ी थी। अंबाला से चण्डीगढ़ के लिए ट्रेनों की फ्रीक्वेंसी अधिक नहीं होने के कारण मैंने बस से ही जाने का सोच लिया था।

दोनों बेटियाँ मेरे साथ थीं। साथ में सामान भी। बारह और पन्द्रह वर्ष की बेटियां गाड़ियों से अक्सर सफर करने की आदी थीं। हम तीन माँ-बेटियाँ अहमदाबाद से मनाली के लिए चल पड़ी थीं। इनके पापा ज़रूरी काम की वजह से कुछ दिन बाद रुक कर आने वाले थे। स्टेशन पर जब ट्रेन में बैठे थे तो उन्होंने कहा था, ''आशा!... ध्यान रखना... तुम बेटियों के साथ हो। ज़माना खराब है। सजग रहना। सोते ही मत रहना।''

''मैं जानती हूं। चिंता मत करो।'' मैंने उन्हें आश्वस्त किया था। लेकिन उन्हें चिंता थी।

''ट्रेन में किसी से खाने-पीने की चीजें मत लेना। किसी से ज़्यादा बातें भी नहीं करनी। अपने बारे किसी को अधिक बताने की ज़रूरत नहीं। तुम में कुछ भी गलत होते हुए देखना बर्दाश्त नहीं करने की सनक है। सनक का कीड़ा सवार नहीं होने देना।'' उनकी आखों में चिंता के साथ-साथ मज़ाक उभर आया था। हालांकि हम यात्रा करने के लिए नए नहीं थे, फिर भी यात्रा के दौरान हर बार की तरह बरती जाने वाली सावधानियों से सचेत कर रहे थे। यह मैं भी जानती थी और वे भी जानते थे कि चिंता के कारण ही वे ऐसा कह रहे हैं। उनकी चिंता स्वाभाविक थी। आजकल हर ओर जिस तरह का माहौल और मानसिकता बन गई है, महिलाओं का लंबी दूरी पर अकेले यात्रा करना वाकई चिंता का कारण हो गई है। उन्होंने अपने मन में उपज रही चिंता को बाहर न आने के लिए मुझे दिलासा देने के लिए ऐसा कहा था। इसे मैं जानती थी। लेकिन मुझे अपने आप पर भरोसा था। मैंने उन्हें बस मुस्करा कर देखा, फिर उनके हाथ को थपथपा दिया था। उन्होंने बच्चों के सिर पर हाथ फेरा और गाड़ी से उतर गए। ट्रेन चल दी। और हमारी यात्रा शुरू हो गई थी।

अंबाला से चण्डीगढ़ के लिए हम तीनों बस से निकल पड़ीं। जब बस चण्डीगढ़ पहुंची, तो शाम के पाँच बजे का समय हो चुका था। अक्तूबर के महीने में शाम के पाँच बजे का समय काफी होना माना जाता है। यहां से अब हमें मनाली के लिए नाइट सर्विस की कोई बस पकड़नी थी।

मैं 17 सेक्टर के मुख्य बस स्टेंड के गंदे और बदबू वाले वाशरूम में जाकर फ्रेश हुई। बच्चों ने भी अपने आपको व्यवस्थित किया। मैंने उन्हें बेंच में बैठ कर इंतज़ार करने के लिए कहा और स्वयं टिकट लेने के लिए टिकट कांउटर की ओर गई। मैं हिमाचल परिवहन निगम बस की टिकटें ले आई। कांउटर पर ज़्यादा भीड़ नहीं होने से टिकटें आसानी से मिल गई थीं। अब तक शाम के छह बज गए थे। बस आधे घंटे बाद चलनी थी। वातावरण में बसों की डीज़ल, पेट्रोल घुली गंध से भरी हवा ठंडक लिए चल रही थी। मनाली जाने वाली बस स्टेंड में लग चुकी थी। हम बस में चढ़े और अपनी सीटों पर बैठ गईं। हमारी सीटें बीच जैसे में थीं।

मैंने बस में अपनी निगाहें दौड़ाई। बस भरी-भरी सी लग रही थी। केवल पीछे की तरफ वाली कुछ ही सीटें खाली दिख रही थीं। कुछ नजरें हमारी ओर भी उठी। वे नज़रें हम तीनों को ही देखकर शायद किसी और का हमारे साथ होने का अनुमान लगा रहे थे। केवल महिलाओं को ही देखकर लोगों की निगाहें क्यों उठ जाती हैं? मैं सोच रही थी।

''मम्मी ... लेडीज़ बहुत कम दिख रही हैं।'' मेरी बड़ी बेटी ने मेरे कान के पास अपना मुंह लाते हुए धीरे से कहा।

''नहीं बेटे! काफी हैं। चिंता न करो।'' मैंने बेटी को आश्वस्त किया। उसने केवल अपना सिर हिला दिया। पन्द्रह साल की उम्र लड़कियों को चिंता करने के लिए काफी होती है।

शाम रात में बदलने को उतावली हो रही थी। बाहर स्टेंड में लाइटें जल उठी थीं। अब तक बस पूरी तरह भर चुकी थी। पीछे वाली सीटों पर भी सवारियां बैठ चुकी थीं। मैं अपने इष्ट देवों को स्मरण करते हुए यात्रा निर्विघ्न और सकुशल, बिना किसी कठिनाई और सुरक्षित घर पहुंचने की मन ही मन प्रार्थना कर रही थी। दोनों बेटियाँ खामोश थी। रात और बस की यात्रा! लगता था, दोनों सोच में पड़ गई हैं। इस उम्र में बच्चों में जो उत्सुकता और जिज्ञासा होती है, सफर पर निकलने और वो भी घर के लिए, वह

भाव देखने लायक होता है। लेकिन ये दोनों तो चुप थीं। गंभीर सी बनी। लेकिन मैं उनकी आंखों की भाषा समझ रही थी। मैंने मुस्कराते हुए उनकी चिंताओं को दूर करने की कोशिश की। मैं उन्हें दब्बू बनाकर नहीं रखना चाहती थी। मेरी यही सोच थी कि 'जो डरता है, वो मरता है।' मेरी चौड़ी सी मुस्कान और तनाव रहित मुख को देखकर दोनों कुछ आश्वस्त तो हुई, लेकिन उनकी निगाहें बस में इधर-उधर दौड़ रही थीं। बस, स्टेंड से चल पड़ी। मुसाफिरों ने एक दूसरे पर उचटती सी दृष्टि डाली। अपने साथ वाले अपरिचित यात्री को देख आश्वस्त हुए।

जब बस शहर की सीमा से बाहर आ गई, तो कंडक्टर ड्राइवर के पास की सीट से उठा। ''कोई बगैर टिकट ... सब अपने-अपने टिकट हाथ में ले लो ...!'' कंडक्टर एक-एक कर सबके टिकट को उसके सीट के पास पहुंचकर चेक करने लगा। जो बिना टिकट और सीट नंबर के बैठे थे, उन्हें टिकट देता जा रहा था और पैसे अपने रैक्सीन के गहरे नीले रंग वाले बेग में डालता जा रहा था। टिकट चेक करते-करते वह पीछे की सीटों तक पहुंच गया।

दरवाज़े के पास पीछे वाली आखिरी सीट के पास वह खड़ा हो गया। सीट पर कुछ अस्त-व्यस्त, मैले-कुचैले से कपड़े पहने बाईस-पच्चीस वर्ष की एक लड़कीनुमा महिला अपनी गोद में एक छोटे से बच्चे को उठाए बैठी थी। एक और छोटे से बच्चे ने उसकी गंदी, मैली हो चुकी साड़ी के एक किनारे को पकड़ रखा था और उसके साथ ही बैठा हुआ था। बैठा हुआ बच्चा तीन-चार साल से अधिक का नहीं लग रहा था। पास में चौदह-पन्द्रह साल का एक और लड़का भी बैठा हुआ था। लड़कीनुमा उस महिला ने एक पतली, झीनी और मैली सी साड़ी पहन रखी थी। मैला सा ही ब्लाऊज़। उसने साड़ी के पल्लू को अपने गले के गिर्द लपेट रखा था। पैरों में सस्ते से रबड़ के स्लीपर। उलझे, बिखरे बाल। माथे पर बड़ी सी लाल बिंदी। दोनों बच्चे भी कमीज़ और कच्छे पहने थे। लेकिन उनके पैर नंगे थे। उन्होंने पैरों में कुछ भी नहीं पहना हुआ था। चेहरों पर मैल जमी हुई। जैसे कई दिनों से मुँह धोया ही न हो। लड़का भी एक धारीदार कमीज़ और नीले रंग की घिसी हुई पेंट पहने बैठा था। लड़के के पैरों में भी रबड़ के स्लीपर थे।

एक ही नज़र में समझ आ जाती थी कि वे किसी अंबानी, बिरला, धन्ना सेठ के नहीं बल्कि किसी गरीब, किसी मज़दूर, मजबूर परिवार के सदस्य हैं। उनके डरे-डरे चेहरे, सीट पर सिमट, सिकुड़कर बैठे हुए देखने से ही लगता था कि गरीबी ही उनकी करीबी दोस्त और दुश्मन दोनों हैं। उनकी सीट के साथ जो दूसरी सवारियां बैठी हुई थीं, वे उनसे कुछ दूरी बनाकर बैठी हुई थीं।

'तुम लोग कहां जाएंगे?'' कंडक्टर ने उनकी शक्ल सूरत और हुलिया देखकर 'तुम' करके पूछा।

'मनली'' लड़कीनुमा युवती ने बहुत धीमी आवाज़ में छोटा सा जवाब दिया।

''टिकट दिखाओ?'' कंडक्टर ने उसे टिकट दिखाने के लिए कहा। वह कंडक्टर का मुँह ताकने लगी। चुप!

''अरे भई टिकट दिखाओ...'' कंडक्टर अब कुछ चिढ़कर बोला।

''टिकट नहानती... टिकट तो नहीं है।'' इस बार उसने उड़िया मिश्रित हिंदी में कहा।

''कितने लोग हैं?''

''तीनटा... दुई पिला... एक भईना।'' उसने अबकी बार उड़िया में ही बताया। कंडक्टर कुछ अधिक समझ नहीं पाया। अब तक लगभग सभी सवारियों की नज़रें इस ओर उठ चुकी थीं।

''कहां जाना है?''

''मनली...'' वही छोटा सा जवाब।

''यह लो टिकट... नौ सौ रुपये दो...'' कंडक्टर ने उसे टिकट पकड़ाते हुए पैसे के लिए हाथ उसके आगे किया। वह चुप ही रही। लेकिन अबकी बार उसने अपनी नज़रें नीची कर ली थी। उसके गोद का बच्चा रोने लगा था।

''अरे भई टिकट के पैसे दो...'' कंडक्टर उसके मुँह के आगे जैसे यमदूत की तरह खड़ा था। युवती का सांवला, काला चेहरा पीला पड़ गया था। उसके साथ वाला लड़का सहमा, सिकुड़ा सा बिल्कुल खामोश बैठा था।

''बाबू जी.. पैसे नहीं है...'' इस बार वह अपनी आवाज़ को जैसे ज़बरदस्ती गले से बाहर निकालने का प्रयास करते हुए बोली। लगता था मानो उसके गले में कुछ फंस गया है जिसके कारण वह बोल नहीं पा रही है।

''पैसे नहीं है... तो बस में क्यों बैठी? क्या पीऊ दी गड्डी है?'' कंडक्टर अब तक माजरा समझ चुका था। वह अब शेर बनकर दहाड़ने लगा। जैसे उसने किसी शिकार को देख लिया हो। बस में इस तरह की घटनाएं कंडक्टर के लिए सामान्य थी शायद।

बस दौड़ रही थी। सभी यात्री अचानक पैदा हो गए इस दृश्य को दिलचस्पी से एकटक देखने लग गए थे। सब समझ चुके थे कि कंडक्टर जिससे बात कर रहा है, उस सवारी के पास टिकट के पैसे नहीं हैं। ''क्या हुआ...?'' आगे से किसी सवारी ने पूछा।

''कुछ नहीं... नौटंकी है... टिकट के पैसे नहीं है। मनाली जाएंगे...'' कंडक्टर व्यंग्य से अपना मुंह बिचकाते हुए हंसा।

''पैसे नहीं... तो बस में बैठे क्यों...'' कंडक्टर को क्रोध आ

गया था। वह अपने दांत भींचने लगा था। परिवहन निगम घाटे में चल रहा था। कंडक्टर किसी भी रूप में रियायत को तैयार नहीं था। लगता था, वह इस टिकट के पैसे वसूल करके घाटे की भरपाई करेगा ।

''कितने पैसे होते हैं...'' किसी ने पूछा।

''दो टिकटां दे नौ सौ रुपैया जी...'' पूछने वाला चुप लगा गया।

''पैसे निकालो भई...'' कंडक्टर उसके सामने वैसे ही खड़ा था। वह लड़की सिर झुकाए चुप बैठी थी। उससे कुछ बोलते नहीं बन रहा था। बस! बड़ी दयनीय सी आंखों से कंडक्टर को देखती, फिर आंखें झुका लेती थी। उसकी आंखें बरसने बरसने को थीं। लगता था, बांध अब टूटा, तब टूटा!

कंडक्टर का धैर्य चुक गया था शायद। उसने अपने बैग से सीटी निकाली और जोर से बजाई। ड्राइवर ने बस को रोक दिया। रात हो चुकी थी। यह एक वीरान सी जगह थी। कोई सवारी उतरने को खड़ी नहीं दिखी। सामने से कोई चढ़ने वाला भी नहीं दिखा। चढ़ने का तो मतलब ही नहीं था। पूरी बस खचाखच भरी हुई थी। ''की होइया... होशियार सिंघा'' ड्राइवर ने ब्रेक लगाते हुए कंडक्टर से पूछा।

''इन्हा दे कोल किराया है नी... बसच बैठीह है... इन्हू उतार दे! बबा दी गड्डी है क्या?'' कंडक्टर बिगड़ कर ड्राइवर को बता रहा था। यह खरड़ और मोहाली के बीच का एरिया था। सड़क पर गाड़ियां दौड़ रही थीं। लेकिन लोगों की आवाजाही अधिक नहीं दिख रही थी। अंधेरी अमावस्या की रात। सड़क के किनारे लैम्पपोस्टों पर कहीं-कहीं पीली रोशनी अंधेरे को पराजित करने की कोशिश कर रही थीं।

कंडक्टर उस युवती, बच्चे और साथ के लड़के को बस से उतर जाने के लिए हड़काने लगा था। वह बिल्कुल संवेदनहीन लग रहा था। उसके लिए तो वे बिना टिकट की सवारियां थीं। लड़की डरी हुई हिरनी की तरह लग रही थी जिसके सामने मानो कोई शिकारी खड़ा हो। कंडक्टर के एक-एक शब्द से वह सिहर-सिहर उठ रही थी। उसके साथ का लड़का कभी कंडक्टर, कभी लड़की को देख रहा था। उसका मुँह डर से सूख गया था। वह सहमा-सहमा सा चुप था, जैसे उसकी ज़ुबान ही न हो! दोनों छोटे बच्चे इन सब से बेखबर, माँ के आंचल को अपनी मुट्ठियों में दबाए टुकुर-टुकुर कभी माँ को, कभी कंडक्टर की तेज़ आवाज़ और लहराते हाथों को देख रहे थे। उन्हें अभी दीन दुनिया की कहां समझ थी? उन दोनों के लिए तो माँ की गोद ही सबसे सुरक्षित और आरामदायक जगह थी। माँ किस मानसिक डर, कष्ट और पीड़ा से गुज़र रही है, इसे समझने की अभी उनकी उम्र ही नहीं थी।

बस रुकी हुई थी। सब लोग तमाशबीन की तरह अपनी सीटों से उचक-उचक कर कभी कंडक्टर, कभी बिना टिकट वाली उस लड़की को और फिर अपने साथियों की ओर देख रहे थे। मेरी बेटियों की आंखें भी हैरानी, कौतुहल और कुछ डर, किसी अप्रिय की आशंका के मिले जुले भाव से उसी ओर लगी हुई थी। वे दोनों शायद छोटे बच्चे और उनकी माँ को सुनसान जगह में उतर जाने के बाद उनकी स्थिति की कल्पना कर चिंतित हो गई थीं।

कंडक्टर उन्हें उतारने पर उतारू था। लेकिन वे लोग सीट पकड़ कर जैसे फैवीकोल की तरह चिपक गए थे। इससे पहले कि कंडक्टर उन्हें हाथ पकड़ कर उठाता, मुझ से रहा नहीं गया, ''क्या करते हो भईया...? इतनी रात में और ऐसी सुनसान जगह में ये कहां जाएंगे''

''हमें क्या करना है... कहां जाएंगे? किराया है नहीं... बस में बैठ गए!''

''इनको ऐसी जगह उतार रहे हो? जानवर नहीं भी खाएंगे तो दो टांग वाले जानवर इन्हें चबा लेंगे! समझते हैं न आप?'' मेरा मन उस लड़की और बच्चों की दयनीय हालत को देखकर जाने कैसा-कैसा हो गया था। हो सकता है, दूसरी सवारियों के मन में भी ऐसे ही विचार और भावनाएं उठ रही हों। कुछ उपाय सोचना होगा? मेरा मन कुछ पल के लिए सोच में पड़ गया। क्या हल निकाला जाए? मुझे अपनी आंखों देखी, झेली और आपबीती कई घटनाएं, स्थितियां, परेशानियां स्मरण हो आईं। स्मरण करते-करते मन और विचार दोनों क्षण भर में भोपाल पहुंच गए। मन पवन से भी तेज़ वेग से दौड़ता है न! मेरे मन में वो वाकया एकदम से कौंध गया।

हम सुरेन्द्र प्लेस में रहते थे। तीसरे माले के फ्लैट में। फ्लैट में बॉलकनी पीछे की ओर थी। उस ओर रेलवे लाइन थी। बहुत व्यस्त लाइन। दिन-रात गाड़ियां धड़धड़ाती, चिंघाड़ती, दौड़ती रहती थी। हम शुरू में तो परेशान हो गए थे। बच्चे पढ़ नहीं पाते थे। रात को ठीक से सो भी नहीं पाते थे। फ्लैट के सामने की ओर कॉमन प्लॉट में क्या हो रहा है, हमें ज़्यादातर जानकारी नहीं रहती थी।

एक बार जुलाई-अगस्त महीने के दौरान एक दिन मैं अपनी बॉलकनी में बैठी हुई थी। नीचे ग्राउंड फ्लोर और कॉमन प्लॉट से ज़ोर-ज़ोर से बोलने की आवाज़ें आने लगी थी। मुझे उत्सुकता हुई और यह जानने की जिज्ञासा हो रही थी कि शोर क्यों हो रहा है? ...क्या माजरा है? मैं छत पर आ गई थी। छत से नीचे देखा, तो काफी लोग जमा थे और डरे-डरे से कभी आगे, कभी पीछे हो रहे थे। मुझे कुछ समझ नहीं आया। मैं सब काम छोड़कर नीचे उतरी थी। गोखले साहब के घर के सामने लोगों की भीड़ लगी थी।

''क्या हुआ...?'' मैंने पूछा था।

''अरे आशा भाभी... गोखले जी के घर में गैस सिलेंडर लीक हो रही है... केप खुली हुई है... वहीं से गैस लीक हो रही है।'' किसी ने बताया था। वहां खड़े सब लोग गोखले साहब के घर की ओर झांक रहे थे। लेकिन घर के अंदर जाने की किसी में हिम्मत नहीं हो रही थी। गोखले साहब और भाभी जी बदहवास सी अन्य लोगों के बीच बाहर ही खड़े थे।

''अरे... गैस एजेंसी या कंपनी को फोन करो न!'' मैंने कहा था।

''फोन कर चुके हैं... उन्होंने थोड़ी देर में पहुँचने के लिए कहा है।''

''तब तक कुछ हो गया तो...?'' सब की तरह मैं भी घबरा गई थी। घर के आगे भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। मर्द, औरतें, नौजवान, अधेड़! पर कोई घर के अंदर अथवा किचन की ओर जाने की हिम्मत नहीं कर रहा था।

मैंने थोड़ा आगे बढ़कर देखा। सिलेंडर की केप धागे से लटक रही थी। गैस तेज़ आवाज के साथ सिलेंडर से निकल रही थी। सीटी बजाने की तरह आवाज़ करती हुई पूरे प्रेशर के साथ। यदि केप को सिलेंडर के मुँह में लगा लिया जाए तो गैस का रिसना, निकलना बंद हो सकता था। लेकिन ऐसा करेगा कौन? कौन अपनी जान को जोखिम में डालेगा! ''गैस कंपनी को कब फोन किया?'' मैंने पास खड़ी मिश्राइन से पूछा था।

''लगभग दो घंटे हो गए...।''

''दो घंटे हो गए? अभी तक नहीं आए... कहीं आग लग गई तो? बिजली के स्विच ऑन हैं या ऑफ?'' मैं घर में आग लगने की आशंका से डर गई थी।

''यदि केप लगाया जाए... तो गैस रिसना बंद हो जाएगा।''

''लेकिन केप लगाएगा कौन?'' मैंने अपने दुपट्टे को कसकर कमर में बांधा। तनिक झुककर किचन में रिसती गैस सिलेंडर की ओर बढ़ी। मेरे नाक और मुँह में गैस का तेज़ भभका आया। पर मैंने हिम्मत नहीं छोड़ी। मैंने उकडूं बैठते हुए फुर्ती से सिलेंडर के केप को दाएं हाथ से पकड़ा और फटाक से सिलेंडर के मुंह पर कसकर दबा दिया। गैस का रिसना बंद हो गया। मेरे केप लगाते ही कोई और भी किचन में आ गया था। उसने सिलेंडर को लपक कर उठाया और बाहर सड़क पर पटक दिया था।

सिलेंडर आधी हो चुकी थी। जितनी गैस निकल चुकी थी, उतने तक का भाग खुरदरा हो गया था। ऐसा लग रहा था जैसे सिलेंडर पर सफेद नमक की परत जम गई हो। सब ने राहत की सांस ली थी। पर, गैस एजेंसी या गैस कंपनी से कोई आया ही नहीं। सबने मेरे साहस को माना था। मुझे भी तसल्ली हुई थी। लेकिन मुझे गैस लग गई थी। पन्द्रह-बीस दिनों तक मेरा सिर भारी बना रहा था। और गले और छाती में दर्द होता रहा था।

लेकिन मुझे अपनी पहल पर संतोष हुआ था। ऐसी ही पहल के लिए मेरे मन में आज यहां इस मुसीबतज़दा परिवार के लिए विचार उठने लगा था। हो सकता है, यह परिवार इस प्रकार की घटनाओं के आदी हों? कपटी या फ्रॉड भी हों? दूसरों की सहानुभूति को प्राप्त करने की कोशिश कर अपना मतलब निकालने के आदी भी हों! कुछ भी हो सकता था! मगर मेरा मन कह रहा था कि ये झूठे नहीं हो सकते, सच्चे हैं। सहानुभूति पाने का ड्रामा नहीं कर रहे हैं। उनकी सूरत ही ऐसी थी कि उन पर अविश्वास करना अपने विश्वास को चोट पहुंचाने जैसा था। मेरी आंतरिक भावना ज़ोर मारने लगी थी। और मैं अपने मन की भावना को और अधिक रोक नहीं पाई। मानवता भी कोई चीज़ है कि नहीं?

''कितने पैसे हैं टिकट के?'' अपनी सीट से उठती हुई मैंने कंडक्टर से पूछा।

''सत सौ रुपैया जी...'' कंडक्टर बोला।

मैंने बस में सब ओर एक नज़र डाली। सब खामोश। मैं अपने मन में उठे विचार को तुरंत अम्ल में लाना चाह रही थी। ''ये मजबूर और लाचार लगते हैं। यदि आप लोग चाहे... तो ये बस में बैठे रह सकते हैं!''

''कैसे...?'' किसी ने कहा।

''हम लोग यदि अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार कुछ पैसे दे सकते हैं... तो टिकट के पैसे हो जाएंगे। शुरूआत मैं करती हूं। सौ रुपये मेरी ओर से...'' मेरे प्रस्ताव से कुछ लोग उत्साहित हो गए। कुछ ने अपनी नज़रें फेर ली। जैसे क्या नौटंकी कर रही हो!

''अपनी-अपनी सोच की बात है... जो कमी रह जाएगी... वो मैं दे दूंगी।'' मैंने फिर कहा। एक तेईस-पच्चीस वर्ष के आसपास का लड़का खड़ा हो गया।

''सौ रुपये मेरी तरफ से...

''पचास रुपये मेरे पास है... पचास मेरे'' सवारियों ने अपनी जेबों से नोटों को निकालना शुरू किया।

और वह लड़का जब बस का पूरा चक्कर लगा चुका, तो उसके हाथ में एक हज़ार से अधिक रुपये थे। उसने नोटों को गिना और कंडक्टर को नौ सौ रुपये पकड़ा दिए। बचे रुपये उसने युवती के हाथ में थमा दिये। कंडक्टर खुश हो गया। उसने फिर सीटी बजाई। ड्राइवर ने गाड़ी आगे बढ़ाई। सबके चेहरों पर संतोष झलक आया। रात होने के बावजूद सबके चेहरे खिल उठे थे। एक पुण्य का काम संपन्न हुआ था। पूरी बस चहक उठी थी।

वह युवती आंखों में आंसू लिए सबको ताक रही थी। उसके बहते आंसू थम नहीं रहे थे। लेकिन यह आंसू एहसान, कृतज्ञता और प्रसन्नता के थे। उसके बहते आंसू उसकी मदद में उठे हाथों को दिल से शुक्रिया कह रहे थे शायद! मेरी एक छोटी सी पहल ने सभी को उनके मन में बसी संवेदना को छू लिया था।

मैंने लड़की से पूछा, ''मनाली क्वडी जाऊ छु?''

''एसरो भप्पा असंति...''

''कौण काम करू छंती?'' मैं अपनी टूटी-फूटी उड़िया में उससे निर्लज्जों की तरह पूछने लगी थी।

''होटल में...'' वह रुक-रुक कर जवाब दे रही थी। दरअसल उसका पति मनाली में किसी होटल में काम करता था। वे लोग उड़ीसा के किसी गांव से आए थे। न तो उनके पास पैसे थे, न हिंदी या किसी अन्य भाषा को ठीक से बोल पा रहे थे। केवल उड़िया ही बोल रहे थे। शायद काम चलाऊ हिंदी आती थी, लेकिन अधिक नहीं। उसने कागज़ का एक टुकड़ा मेरी ओर बढ़ाया। मैंने कागज़ हाथ में लिया। देखा, उड़िया में कुछ लिखा था। मैं पढ़ नहीं पाई। लेकिन अंदाज़ा लगाया कि मनाली में किसी होटल का पता है। मनाली ने बहुत लोगों को रोज़गार दिलाया हुआ था। स्थानीय लोगों के साथ-साथ बाहर के लोगों को भी। देश के विभिन्न भागों से लोग वहां तरह-तरह के काम में लगे थे।

मैं अपनी सीट पर वापस आई। मेरी बेटियां मुझे ऐसे ताक रही थीं जैसे मैंने कोई बहुत बड़ा पुण्य और बहादुरी का काम किया हो। मेरे मन को बहुत तसल्ली हुई। मुझे अपनी इस छोटी सी पहल से एक बेबस परिवार की सहायता कर पाने से परम संतुष्टि का अहसास हुआ।

बस दौड़ रही थी। रात गहरा रही थी। कीरतपुर पार हो चुका था। हिमाचल का क्षेत्र आरंभ हो चुका था। बस की रफ्तार अब कुछ धीमी पड़ने लगी थी। कंडक्टर ने बस के अंदर जलती बत्तियां बंद कर दी थी। लोग उंघते-उंघते सोने लगे थे। कुछ लोगों की खर्राटों की आवाज़ बस में गूंजने लग गई थी। बस दौड़ती ही जा रही थी।

रात की कालिमा छट रही थी। सुबह का उजाला फैलने को आतुर लग रहा था। बस में कोई-कोई अभी भी सो रहा था, कोई ऊंघ रहा था। रात्रिकालीन यात्रा के बाद थके, अधलेटे, उन्नींदे लोग बिना हलचल किये यूं ही पड़े थे।

बस मण्डी के बस स्टेंड में लगी थी। जो जगे, अधजगे थे उनकी निगाहें बस के पिछले दरवाज़े की ओर उठी। एक सांवला सा इकहरे बदन का नौजवान बिखरे बाल, अस्त-व्यस्त और तुड़े-मुड़े कपड़ों में बस के दरवाज़े को खोलकर अंदर आ रहा था। अलसुबह का समय और वातावरण में ठंडक के बावजूद उसने एक कमीज़ और एक घिसी, मैली सी जीन्स की पेंट पहन रखी थी। वह दरवाज़े से अंदर आया। उसने एक सरसरी निगाह अधसोये, अधलेटे लोगों पर डाली। वह किसी को पहचानने, खोजने, देखने की कोशिश कर रहा था।

लोगों को देखते-देखते अचानक उसकी आंखें चमक उठी। वह उस ओर तेज़ी से बढ़ा जहां वह उड़िया युवती और उसके बच्चे आपस में लिपटकर सीट पर सोये पड़े थे। नौजवान उस सीट तक एक छलांग में पहुंच गया। कुछ देर रुका और फिर, ''सुनीता... सुनीता...!'' कहते हुए उसने लड़की के कंधे पर हाथ रखा। वह लड़की हड़बड़ा कर उठी, लेकिन फिर उसकी आंखें एकदम स्थिर हो गई। युवती की आंखें अवर्णनीय प्रसन्नता, हैरानी और भावातिरेक से डबडबा आई। कोई कुछ नहीं बोला। कुछ पल ऐसे ही बीते। दोनों जलभरी आंखों से केवल एक-दूसरे को देखते रहे। लेकिन नौजवान अब अधिक स्थिर नहीं रह पाया। वह आगे बढ़ा और युवती को बच्चों समेत अपनी बांहों में भर लिया। साथ का लड़का अपनी आंखें मलते हुए उठा। उसने जैसे ही नौजवान को देखा, उसके मुख पर एक लंबी सी मुस्कान खिल गई। वह कुछ बोल नहीं पाया। लेकिन उसकी भर आई आंखें जैसे सब कुछ बता रही थीं कि वह बहुत खुश है, और अब निश्चिंत है।

बस में जो लोग जगे हुए थे, उनकी नज़रें इसी ओर लगी हुई थीं। वह नौजवान उस लड़की का पति था। वह उन्हें लेने के लिए मनाली से आया था। युवक भी उसी सीट पर बैठ गया। युवती अब पूरी तरह तनाव रहित लग रही थी। और नौजवान ने युवती को बच्चों सहित अपनी छाती से चिपका लिया था। उसका परिवार अब उसके साथ था।

मेरी आंखें उन्हें इस हाल में देखकर खुशी से भर आई थी। मेरी बड़ी बेटी भी अब तक जग गई थी।

मेरी आंखों में नमी देख उसने पूछ ही लिया, ''क्या हुआ मम्मी?''

''कुछ नहीं बेटे... ये तो प्रसन्नता के आंसू हैं।''

सच में! मुझे बहुत खुशी हो रही थी। मैंने पाया, कुछ अन्य लोग भी अपनी आंखों में उभर आई नमी को पौंछने लगे थे।

मनाली पहुंचने के लिए बस फिर से चल पड़ी थी। कंडक्टर मनाली... मनाली आवाज़ लगा रहा था। ■

नाग मंदिर कॉलोनी, शमशी, कुल्लू।

भद्दू और मिली

सिद्धार्थ दवा

शिमला की सुन्दर वादियों में बसा हमारा घर 'ड्रीम ओज़' आज एक खामोशी की चादर लपेटे खड़ा था। कौन सोच सकता था कि हम सबकी खुशियों की डोर एक साधारण से कुत्ते से जुड़ी होगी। साधारण शब्द भी इस कुत्ते के लिए बड़ा सा लगता था। शायद इस लिए मिली उसे 'भद्दू' के नाम से पुकारती थी। आंगन के बीचों बीच पड़ा था भद्दू - बेजान-मानो कोई और हो। वह तो भागता रहता था या फिर भगाता रहता था। जिस्म बेजान था पर चेहरे पर ऐसी शान्ति थी, जो उसे सुन्दर बना रही थी। क्यारी में लगे फूलों के साये में उसका चेहरा अपनी ओर आकर्षित कर रहा था।

उसके साथ ही पड़ी थी ज़ंग से सनी हुई कील जिसे उसके पैर से बड़ी मुशक्कत करके निकाला गया था। बात यूं थी कि भद्दू दो हफ्ते बाद घर लौटा था। बदसूरती के सिवा आवारापन्थी भी उसमें भरपूर रची-बसी थी। अब याद आ रहा था उसका हर तीसरे हफ्ते घर से भाग जाना और खून से लथपथ होकर लौट आना अपनी दवा-दारू के लिए। आवारा, समझदार भद्दू!

पर आवारा था हमारे लिए। दुनिया के लिए वह था ''भयंकर भद्दू''। दूध वाला, कुरियर वाला, दोस्त, रिश्तेदार, पड़ोसी सभी कभी न कभी उसके शिकार हो चुके थे। भद्दू का कहर इस हद तक था कि एक समय में शिमला शहर बंटा था दो तरह के लोगों में - जिन्हें भद्दू ने काटा था और जिन्हें भद्दू आने वाले समय में काटने वाला था। हम मज़ाक करते थे कि किसी को अपनी पेन्ट रोल करने को बोलो तो उसकी टाँग में भद्दू के दांत के टेढ़े-मेढ़े निशान ज़रूर मिलेंगे।

घर के बड़ों ने देर तक भद्दू के किस्सों की बातें की और जब उसे दफनाने की बात छिड़ी तो मिली - घर की छोटी बेटी और भद्दू की मालकिन ने कहा, "भद्दू को घर के पीछे आँगन में दफनाएँगे। बाहर नहीं।" मिली की बात किसी पत्थर की लकीर से कम नहीं मानी जाती थी। सभी ने हामी भरी। अचम्भा तब हुआ जब मिली ने दफनाने की जगह को चुना - उसके चहेते पेड़ के नीचे। यह मिली की सबसे प्यारी अपनी जगह थी, जहां उसके सिवा किसी का आना-जाना मानो लगभग मना था। यह उसके खिलौनों का संग्रह जो था। उस छोटे पेड़ की हर टहनी से टंगी थी बीसों सुन्दर गुड्डे-गुड़ियाँ। खूबसूरत फूलपत्तों से सजे पेड़ से टंगे थे चिड़ियों के पंख भी। पेड़ के नीचे बिछी थी एक रंगबिरंगी कालीन जिसपर रखा था एक बक्सा कहानी की किताबों से भरा। किताबें इतनी की बक्से का ढक्कन बंद न हो पाए।

फिर हम सब ने एक ऐसा नज़ारा देखा जिसकी किसी ने भी कल्पना नहीं की थी। हमने देखा मिली को अपनी प्यारी दुनिया तोड़ते हुए। पहले किताबें उड़ी, फिर मोती, फूल और फिर बारी आई गुड़ियों की और कालीन की भी। और उसके साथ गया उसका प्यारा भालू।

भद्दू पर उसका प्यार बिन रुके बरस रहा था। यह हमारे लिए विश्वास के बाहर था कि वही कुत्ता जिसके पीछे मिली लाठी ले भागती रहती थी उसी के प्यार में ओतप्रोत थी। एक बार तो भद्दू ने इसी कालीन पर सोने के जुर्म पर बहुत मार खाई थी। माली और मिली ने कुछ समय में ही एक गढ़ा खोद डाला। और उसके दुगने तेज़ी से भद्दू ज़मीन के 3 फुट नीचे पड़ा था। और इसी के साथ एक बेसुध, मरा हुआ कुत्ता मिली के दिल में एक गहरी जगह बना चुका था। और यही मिली की नई दुनिया थी। तभी मिली उठी और घर की ओर भागी। दो मिनट बाद वह बाहर आई। कुत्तों के बिस्कुट का बॉक्स लहराते हुए लगता था वह खुश थी। पर उसके चेहरे में कोई भाव नहीं था। फिर बिस्कुट भरी टोकरी को भद्दू के पास तक धीरे-धीरे नीचे किया गया और मिट्टी की अनगिनत मुट्ठियाँ भर एक चादर की परत दर परत बुनी गई।

फिर लगा भद्दू और मिली की दोस्ती शायद पुरानी ही थी। हम ने ही इसे पहचाना नहीं था या फिर उनकी दोस्ती दिखावे की नहीं थी। मिली और उसका चार टांगों वाला दोस्त सच्चे मित्र थे। फिर याद आया कैसे एक बार भद्दू ने मिली को एक पागल बन्दर से बचाया था। भद्दू खून से लथपथ हो गया था उस दिन और तीन सप्ताह लगे थे उसे ठीक होने में। आखिर में मिली ने अपनी स्वेटर उतारी और कब्र पर ओढ़ा दी जो अब उसके और भद्दू के प्यार का मकबरा बन चुका था।

उस समय हम सब ने मिली को अपने दोस्त के साथ कुछ पल बिताने का मौका देना ठीक समझा और हम सब घर के भीतर आ गए।

आधा घण्टा ही बीता होगा जैसे ही गर्म चाय का एक और भाप हवा में उड़ कर बिखर गया कि मिली भागती हुई घर में दाखिल हुई। वह चिल्ला रही थी, " कहां है मेरी छड़ी - कहां है!!!" उसके चेहरे पर मुस्कुराहट खिल रही थी। उसने सोफे के पीछे से छड़ी उठाई जो जल्दबाज़ी में लगभग हाथ से छूट ही गई थी। मिली ने रुक कर छड़ी पर मज़बूत पकड़ बनाई और दरवाज़े को पैर की लात से खोल कर बाहर की ओर भागी। और हम सब ने फिर वही आम नज़ारा देखा - मिली भाग रही थी भद्दू के पीछे-छड़ी लहराती हुई और भद्दू भाग रहा था आगे, उसकी पूंछ का हिलना बंद नहीं हो रहा था और जीभ बाहर लपलपा रही थी। लगता था मानो वह मुस्कुरा रहा हो। मज़े ले रहा था, मिली से मिलन का। और इस सब के बीच मैं देख रहा था किसी बिचारे कुत्ते की खामोश कब्र को! ■

महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति का अधिकारः लाहुल के संदर्भ में

सतीश कुमार लोप्पा

जनजातीय महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति के अधिकार से वंचित रखने वाले 'रिवाज़-ए-आम' के संदर्भ में पिछले दिनों अदालतों की ओर से प्रतिकूल टिप्पणियां सामने आई हैं। ऐसे प्रावधानों को संविधान विरोधी माना गया है। सो इस विषय पर गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता सामयिक और प्रासंगिक जान पड़ता है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि कल को कहीं कोई अदालत अपना मनमाना आदेश न थोप दे। ऐसा होने से पूर्व हमें आश्वस्त हो जाना चाहिए कि हमारे लिए क्या अभीष्ट है और क्या नहीं। तभी हम अपनी बात स्पष्ट और सशक्त तरीके से उपयुक्त मंच पर रख सकेंगे।

रिवाज़-ए-आम कुल्लू और लाहुल स्पीति के लोगों में प्राचीन काल से प्रचलित विवाह, उत्तराधिकार, बंटवारा आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्धित रिवाज़ों का संकलन है जिसे सन् 1868 के बाद से ही कानून का दर्जा प्राप्त है। सर्वप्रथम 1868 ई. में कुल्लू सब डिवीजन में हुए प्रथम बन्दोवस्त के समय तत्कालीन बन्दोवस्त अधिकारी सर जेम्स लयाल ने 25 प्रश्नों पर आधारित एक दस्तावेज़ स्थानीय भाषा में तैयार करवाया था। प्रशासनिक कार्यान्वयन की दृष्टि से यह काफी अधूरा था। अतः सन् 1945-52 के बन्दोवस्त के समय सहायक बन्दोवस्त अधिकारी श्री बचित्तर सिंह की देख रेख में 124 प्रश्नों पर आधारित प्रचलित रिवाज़ों का अग्रेज़ी भाषा में प्रश्नोत्तरी के रूप में संकलन किया गया। इसे ही हम आज 'रिवाज़-ए-आम' के रूप में जानते हैं। इसे हर तरह से हमारे लिए निजी कानून (Personal Law) का दर्जा प्राप्त है और पूर्णतः प्रभावी है। यद्यपि कुल्लू में हिन्दू कोड बिल लागू होने के बाद गैर जनजातीय लोगों पर यह निरस्त हो गया।

प्राचीन काल से ही भारत वर्ष के प्रायः सभी पितृ प्रधान समुदायों में इसी प्रकार के नियम प्रचलन में थे। इसे 'मिताक्षरा' नियम कहा जाता है। मिताक्षरा याज्ञवल्क्य संहिता की विज्ञानेश्वर कृत टीका है जिस में हिन्दुओं के रीति रिवाज़ों का विस्तृत ब्यौरा दर्ज है। इस में वर्णित रिवाज़ों को अंग्रेज़ों ने कानूनी मान्यता प्रदान की। सन् 1952 से 1956 के मध्य नेहरू सरकार ने 'हिन्दू कोड बिल' संसद में पारित करवाया जिस के चार भाग थे --

1. हिन्दू विवाह अधिनियम- 1955 (Hindu Marriage Act-1955)
2. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम- 1956 (Hindu Succession Act-1956)
3. हिन्दू अवयस्कता एवं संरक्षकता अधिनियम (Hindu Minority and Guardianship Act 1956)
4. हिन्दू दत्तक एवं भरण-पोषण अधिनियम (Hindu Adoption and Maintenance Act. 1956)

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम- 1956 में भी महिलाओं को सम्पत्ति पर सम्पूर्ण (absolute) अधिकार नहीं दिए गए थे। अतः सन् 2005 में हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम- 2005 लाया गया जिस के तहत किसी भी पुत्री को पुत्र के समान सम्पूर्ण अधिकार पितृ-गृह में प्रदान किए गए। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह अधिनियम सिर्फ हिन्दुओं पर लागू होता है। इस अधिनियम में 'हिन्दू' की परिभाषा में बौद्ध, जैन, और सिक्ख भी शामिल हैं। लेकिन इसी बिल में एक प्रावधान यह भी है कि जो भी क्षेत्र भारतीय संविधान के आर्टिकल 366 के क्लॉज़ (25) में परिभाषित अनुसूचित जनजाति के अन्तर्गत आता है, वहां पर उपरोक्त अधिनियम लागू नहीं होगा। अतः हमारे जनजातीय क्षेत्र को भी इसी ढाल की सुरक्षा (immunity) हासिल है। लेकिन आज के बदलते क्षेत्रीय एवं वैश्विक परिवेश के चलते किसी भी क्षेत्र की आधी आबादी को अनन्त समय तक वंचित रख पाना न तो वाञ्छित है और न संभव ही हो सकता है। आवश्यकता एक ऐसे समाधान की है जिस से सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

किसी भी निष्कर्ष तक पहुंचने से पूर्व इस तरह के रिवाज़ों के अस्तित्व में आने के मूल कारणों को जान-समझ लेना आवश्यक है। कुछेक मोटे-मोटे कारण हमें स्पष्ट दिखाई देते हैं।

1, हमारे समाज का पितृप्रधान होना। इस व्यवस्था में पिता की ओर से पुरुष-दर-पुरुष वंश का आगे बढ़ना माना जाता है। जब कि मातृप्रधान समाज में ठीक इस के उलट व्यवस्था होती है।

2, किसी एक वंश की पैतृक सम्पत्ति का अपने वंश से बाहर बंटवारे को रोकना। इस में भी अचल सम्पत्ति यानि कृषि भूमि को वंश से बाहर जाने से रोकना सब से बड़ा और मूलभूत कारण है।

3, तीसरा बड़ा कारण जो हमें दिखता है वह है महिला का विवाह के बाद पराए वंश में स्थानान्तरण। विवाह के बाद बेटी पितृ-गृह को सदा-सर्वदा के लिए छोड़ कर ससुराल वाले गृह में जा कर बस जाती है। कोई भी व्यक्ति कभी भी यह नहीं चाहता है कि उस की भू-सम्पत्ति का एक भाग बेटी के साथ उसके ससुराल वालों के पास चली जाए। सम्पत्ति के इसी वंचन की क्षति पूर्ति के रूप में हिन्दुओं में दहेज प्रथा चलन में आई। यहां यह बात भी सच है कि अपवाद स्वरूप ही कोई बेटी यह चाहती होगी कि उस के पितृ-गृह की ज़मीन ससुराल वालों के हाथ चली जाए। वह भी अपने पितृ-गृह के प्रति एक विशेष तरह की संवेदनशीलता अपने अन्तःकरण में सदा संजोए रहती है।

वहीं, पितृ प्रधानता की दृष्टि से देखा जाए तो यही एक मार्ग है जिस से हो कर किसी वंश की भू-सम्पत्ति पराए हाथों में जा सकती

है। दूसरी ओर कोई भी महिला कभी भी विवाह कर ससुराल में जा बसने के लिए प्रायः स्वतंत्र होती है। अतः भू-विखण्डन के इस मार्ग को निरुद्ध करने के लिए समूची स्त्री जाति को ही, उन के विवाहित या अविवाहित होने के विभेद के बिना सम्पत्ति के हर अधिकार से वंचित कर दिया गया।

उपरोक्त मार्ग से भू-विखण्डन मात्र एक मिथ्या धारणा नहीं है। इसे घटित होते देखा जा सकता है। पड़ौसी ज़िला कुल्लू में भू-खण्डों की लगातार बहुतायत में हो रही बिकवाली का एक कारण यह भी है।

विवाह पश्चात जब महिला पितृ-गृह से दूर जा कर बस जाती है तो वह वहां से पिता के गांव आ कर अपने को मिले उस छोटे से भू-खण्ड की देख-रेख नहीं कर सकती। इस लिए देर-सवेर ससुरालियों के दबाव में वह उस भू-खण्ड को बेच देने के लिए राज़ी हो जाती है या वाध्य हो जाती है। इस तरह वह भूमि न तो पितृ-गृह की रहती है न ससुराल की, वह किसी तीसरे पक्ष के हाथ चली जाती है। और वह महिला एक बार फिर वंचित की पांत में आ जाती है।

4, ऐसी विकट भौगोलिक परिस्थितियां; जहां कृषि-भूमि के विस्तार की कहीं कोई संभावनाएं नहीं हैं, जहां जीवनयापन हमेशा चुनौती बनी रहती है; इस तरह के नियमों को और अधिक कड़ाई के साथ पालन करवाने और हमेशा जीवित रखने के लिए वाध्य करती हैं। लाहुल-स्पीति, किन्नौर, पांगी में परिस्थितियां इसी प्रकार की वाध्यकारी रही हैं, अतीत में भी और आज भी। यद्यपि यहां यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि लाहुल में, परिवार में उत्पन्न विषम परिस्थितियों की सूरत में किसी भी महिला को रहने के लिए एक अलग कमरा और जीवनयापन के लिए आयुपर्यन्त एक छोटा सा खेत (चुम्ज़ः और मुम्ज़ः) प्राप्त करने का अधिकार हासिल है। तथापि आज के हालात में इसे नाकाफी ही माना जाएगा।

इस समूचे विश्लेषण के बाद हम देखते हैं कि आज के लाहुल में सभी मूलभूत कारक न्यूनाधिक जस की तस हैं। तो क्या हम 'हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम- 2005' को अपने क्षेत्र में मौजूदा स्वरूप में लागू करवाने के पक्ष में जा सकते हैं? मेरा स्पष्ट उत्तर है- नहीं। बिल्कुल नहीं। यह कानून इस क्षेत्र की अत्यन्त सीमित कृषि-आर्थिकी को ध्वस्त कर देगा। कभी-कभी तो मुझे लगता है कि यह कानून आंखें मूंद कर बनाया गया है। ऐसा कहने का कारण यह है कि इस में महिलाओं के जीवन से सम्बन्धित बहुत बड़ी परिघटना को सरासर नज़रन्दाज़ कर दिया गया है। वह यह कि महिला अपना सारा जीवन विवाह पश्चात ससुराल में ही गुज़ारती है। वह विवाह के बाद पिता के घर में नहीं रहती है। कोई व्यक्ति जहां रहता ही नहीं है, वहां उस के अधिकारों को स्थापित करना न तो तर्क संगत है और न ही न्याय संगत। उस को अधिकार वहां चाहिए जहां वह अपना सारा जीवन बसर करता है। वर्तमान स्थिति ऐसी ही है जैसे कि हिमाचल का कोई व्यक्ति केरल में जा बसे और वहां की सरकार उस से कहे कि तुम कर्त्तव्य तो हमारे लिए निभाओ और अपने लिए अधिकार हिमाचल सरकार से मांगो। क्या ऐसा संभव हो सकता है? महिलाओं के साथ ठीक यही हो रहा है।

जब तक बेटी पिता के घर में रहती है वह उस तरह प्रताड़ित भी नहीं होती है। प्रताड़ना की स्थितियां प्रायः ससुराल में उत्पन्न होती हैं। अतः महिलाओं के अधिकारों की रक्षा ससुराल में ही होनी चाहिए। न कि पिता के घर में। पिता ने तो पाल-पोस कर बड़े लाड़-प्यार के साथ उसे विवाह योग्य बनाया है, पढ़ाया लिखाया है। हाँ, यदि महिला अविवाहित रह कर पितृ-गृह में ही वास करती है तो पिता के बाद उस के अधिकारों की सम्पूर्ण रक्षा पितृ-गृह में ही होनी चाहिए। इन दोनों ही अवस्थाओं की यही एक मात्र तार्किक परिणति हो सकती है। इस से इतर कुछ हो ही नहीं सकता।

अब प्रश्न यह है कि यह संभव कैसे होगा? यह संभव है। महिलाओं के अधिकारों की रक्षा भी हो और पितृ गृह की भू-सम्पत्ति भी एक जुट रहे, ऐसी व्यवस्था की जा सकती है। इसे धरातल पर उतारने के लिए मैं निम्न नियमावली प्रस्तुत करना चाहता हूं जिस से उपरोक्त दोनों लक्ष्यों को एक साथ हासिल किया जा सकता है।

नियमावली-

(क) अविवाहित पुत्री के संदर्भ में-

1, अविवाहित पुत्री/पुत्रियां जन्मतः पुत्र/पुत्रों के समान ही पिता के चल/अचल सम्पत्ति के बराबर के हकदार होंगे।

2, पुत्री को वही सब अधिकार प्राप्त होंगे जो उस सूरत में उसे प्राप्त होते यदि वह पुत्र होती।

3, उस पर भी पुत्र के समान ही उस सम्पत्ति से सम्बन्धित सभी देन दारियां/लेन दारियां लागू होंगी।

4, अविवाहित महिला की मृत्यु पर उपरोक्त उपबन्धों की रूह से प्राप्त सम्पत्ति उसके शेष जीवित भाई बहनों को समभाग प्राप्त हो। यदि उस के किसी भाई की मृत्यु पहले हो गई है। और उस के पुत्र-पुत्रियां जीवित हों तो उन्हें उस हिस्से में से उतने का समभाग प्राप्त हो जितना कि जीवित होने की स्थिति में उन के पिता को प्राप्त होता।

(ख) विवाहित पुत्री के संदर्भ में-

1, किसी भी पुत्री का राजकीय नियमानुसार विवाह पंजीकरण के साथ ही नियम (क) में वर्णित सभी अधिकार निरस्त माने जाएंगे।

2, विवाह पश्चात किसी भी महिला को पति की चल/अचल सम्पत्ति में स्वतः ही कानूनन बराबर का हकदार माना जाए।

3, पति के पिता की मृत्यु पर पति को प्राप्त होने वाली भू-सम्पत्ति पर पत्नी का नाम भी समभाग के आधार पर राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया जाए।

4, उपरोक्त उपबन्धों की रूह से सम्पत्ति प्राप्त करने वाली विवाहिता महिला की मृत्यु पर वह सम्पत्ति उस की कोख जायी पुत्र-पुत्रियों को समभाग आधार पर प्राप्त होगी। यदि ऐसी महिला के किसी पुत्र की मृत्यु उस से पहले हो गई हो और उस के पुत्र-पुत्रियां जीवित हों तो उन को उतने भाग का समभाग प्राप्त होगा, जितना उन के मृत पिता को जीवित होने की अवस्था में प्राप्त होता।

5, उपरोक्त उपबन्धों की रूह से सम्पत्ति प्राप्त करने वाली विवाहिता के पति की यदि मृत्यु हो जाए तो उस की सम्पत्ति उस के वैध पुत्र/

पुत्रियों को समभाग प्राप्त होगा। इस सम्पत्ति पर पत्नी किसी प्रकार के हक का दावा नहीं कर सकती।

6, किसी पति की एकाधिक पत्नियों की अवस्था में सभी पत्नियों के साथ पति को समभाग प्राप्त होगा, बशर्ते कि ये विवाह कानूनन वैध हों।

7, कानूनन वैध विवाह विच्छेद की अवस्था में नियम (ख) में वर्णित विवाहिता के सभी अधिकार निरस्त हो जाएंगे और नियम (क) में वर्णित सभी अधिकार बहाल हो जाएंगे।

8, विवाह विच्छेद की अवस्था में विवाहिता को नियम (ख) की रूह से प्राप्त सम्पत्ति उस के पति को पुनः वापिस हो जाएगी।

9, यदि विवाहिता किसी कारणवश पति के गृह का त्याग कर दे तो पति के गृह में उसे प्राप्त सभी अधिकार निरस्त माने जाएंगे।

10, नौकरी पेशा विवाहिता महिला की आय तथा उस के पति की आय को सांझा सम्पत्ति माना जाए।

11, इन नियमों को लागू करने का दायित्व-

(अ) विवाह मृत्यु पंजीयक का कर्त्तव्य होगा कि वह विवाह के पंजीकरण के 2 सप्ताह के भीतर पटवारी हलका को पंजीकरण के पूर्ण विवरण सहित विवाह की रपट भेज दे। मृत्यु के पंजीकरण पर भी यही प्रक्रिया अमल में लाई जाए।

(इ) पटवारी हलका, पंजीयक विवाह/मृत्यु की रपट को तत्काल अपने रोज़ नामचे में दर्ज करे। किसी भी मृत्यु की रपट के प्राप्त होने के 2 सप्ताह के अन्दर किसी विवाहित पुरुष को प्राप्त होने वाली सम्पत्ति की विरासत दर्ज करते हुए उस की वैध/पंजीकृत पत्नी का नाम भी समभाग आधार पर दर्ज करे।

(उ) ऐसा करने में नाकाम रहने पर उपरोक्त सरकारी कर्मचारी/अधिकारी पर दंडात्मक कार्यवाही हो। ऐसी अवस्था में पीड़ित महिला को किसी भी तरह से दोषी नहीं माना जाएगा और न ही उस के अधिकारों को कम या निरस्त किया जा सकेगा।

(ए) इन नियमों को कार्यन्वित करना पूर्णतः सरकार का दायित्व होगा।

(ग) फो-बग या घर जमाई के संदर्भ में-

1, फो-बग या घर जमाई के रूप में जब कोई पिता परम्परानुसार ज़ोङ/स्वाज नाम से उपहार आदि दे कर विधिपूर्वक विदा करता है तो उस पुत्र का अपने पिता की सम्पत्ति पर दावा निरस्त हो जाता है।

2, पितृ-गृह में उस की स्थिति ब्याह कर विदा कर दी गई घर की बेटी के समतुल्य हो जाती है।

3, इस परम्परानुसार विदा कर के ससुराल भेज दिए गए घर जमाई को उस की पत्नी या पत्नियों को उत्तराधिकार में प्राप्त चल/अचल सम्पत्ति में समभाग स्वतः ही कानूनन प्राप्त हो जाएगा। इस मामले में भी नियम (ख), उपनियम (11) में वर्णित प्रक्रिया लागू होगी।

4, यदि कोई घर जमाई वैध विवाह विच्छेद कर, पितृ-गृह में लौट आता है तो पितृ-गृह में जन्मतः पूर्व निधार्रित उस के सभी अधिकार बहाल हो जाएंगे और ससुराल में प्राप्त सम्पत्ति के अधिकार निरस्त हो जाएंगे और वह सम्पत्ति उस की पत्नी/पत्नियों को समभाग प्राप्त होगा।

5, इस विवाह से उत्पन्न पुत्र एवं पुत्रियां विवाह विच्छेद के बाद अपने पिता की अपने पितृ-गृह में प्राप्त सम्पत्ति पर किसी किस्म के हक का दावा नहीं कर सकेंगे। उन का दावा उन के मातृ-गृह तक ही सीमित होगा।

(घ) 1, **रिवाज़-ए-आम** के उन सभी प्रावधानों को निरस्त माना जाए जो नियम (क), (ख), (ग) के प्रावधानों का अतिक्रमण करते हैं।

2, **रिवाज़-ए-आम** के उन सभी प्रावधानों को यथावत जीवित माना जाए जो नियम (क), (ख), (ग) के प्रावधानों से सम्बद्ध नहीं हैं।

(ङ) **इस नियमावली के प्रावधान** सभी प्रकार की पैतृक एवं वसीयत रहित स्व अर्जित चल/अचल सम्पत्ति पर समान रूप से लागू होंगे।

(नियमावली समाप्त)

इस सारे उठक-बैठक का दो पंक्तियों में उपसंहार यह है कि अविवाहित बेटी को पिता के घर में बेटों के बराबर सम्पत्ति का हक और विवाहिता बेटी को ससुराल में पति के हिस्से की सम्पत्ति का आधा भाग।

इस नई प्रस्तावित व्यवस्था का अध्ययन-विश्लेषण करने पर यह कहा जा सकता है कि यदि इसे सामाजिक और कानूनी मान्यता मिल जाए तो महिला अधिकारों की पूर्ण रूपेण रक्षा तो होगी ही, साथ में पितृ प्रधान समाज की मूल संरचना को भी कोई क्षति नहीं होगी। एक साथ दोनों उद्देश्यों की परिपूर्ति हो पाएगी। मेरा तो यहां तक कहना है कि देश भर में लागू कानून 'हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम- 2005' के स्थान पर इस लेख में प्रस्तावित उपरोक्त नियमावली को लागू किया जाना चाहिए। इस से सच्चे अर्थों में महिला सशक्तीकरण हो पाएगा। साथ ही साथ समस्त "हिन्दू" समाज का भी भला होगा।

लाहुल के कई पढ़े-लिखे लोगों को यह कहते हुए सुना जाता है कि हम तो बेटियों को पैतृक सम्पत्ति देना चाहते हैं पर हमारा कानून हमें इजाज़त नहीं देता। इस लिए हम दे नहीं पाते। यह तर्क सरासर खोखला है। यह खुद को प्रगतिशील दिखाने का एक असफल प्रयास भर है। कानून डंडा ले कर आप के गर्दन पर सवार नहीं रहता। कानून तो तब सामने आएगा जब आप का पुत्र आप के निर्णय को अदालत में चुनौती देगा। क्या अपने पुत्र/पुत्रों पर कोई अख्तियार नहीं रह गया है? तो समझाओ। वे भी तो आप ही की तरह प्रगतिशील होंगे! बेटी को बसीयत कर के ज़मीन-जायदाद पुत्र/पुत्रों के साथ समभाग दे दो। कोई नहीं आएगा रोकने। सचमुच में दे देना और देने का ढोंग करना, दो अलग बातें हैं।

जानता हूँ समाज का एक बड़ा तपका इस लेख के लिए मुझे लानत भेजेगा। मैं इस के लिए तैयार हूँ।

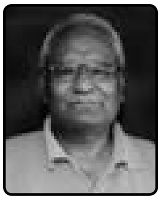

शौ ए शौ ए राणी

बलदेव सिंह रापा

जे० हचिसन एवं जे. पीएच. वोगल लिखते हैं - चम्बा वंशावली में सुकेत रियासत के संदर्भ में एक दिलचस्प वर्णन लिखा गया है। लगभग 800 ई० में किरा नामक एक विदेशी जाति द्वारा चम्बा की राजधानी ब्रह्मपुरा जीता गया। युद्ध में राजा मारा गया। उसकी रानी गर्भवती थी। सुरक्षा के लिए अधिकारियों द्वारा ले जाते हुए बाहरी पहाड़ियों की राह में रानी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। जिसका नाम मूषन वर्मन रखा गया। रानी और कुंवर ने सुकेत रियासत में शरण ली। बड़े होने पर कुंवर मूषन वर्मन ने सुकेत की राजकन्या से शादी की। सुकेत की राजधानी एवं केन्द्र पंगना की जागीर दहेज में मूषन वर्मन ने प्राप्त की। सेना का गठन कर विदेशी जाति को खदेड़ कर मूषन वर्मन ने अपना देश वापस प्राप्त किया।

(J. Hutchison and J. Ph Vogel History of Punjab Hill states Volume-1 Chapter -V111 Suket State page 342 Reprint 1982 Department of Languages and Culture H.P.)

सर्व विदित है कि लाहुल विशेषतयः पटन घाटी अतीत में चम्बा राज्य का अंग रहा है। वीर प्रतापी सूर्य वंशी राजा मूषन वर्मन संबधी उपरोक्त घटना का वर्णन लाहुली लोकगीत घुरे में मिथक कथा रूप में सदियों से गाया जाता रहा है।

"घुरे"

शौ ए शौ ए राणी जे, एकी आना राजा जे।।
शौ ए शौ ए राणी जे, बिबुता ना पेई जे।।
एकी आ ना राणी जे, पेऊके आ नू दौड़ी जे।।

शत-शत रानियां राजा था एक
शत-शत रानियों पर पड़ी विपदा की मार
एक रानी ने किया पलायन पीहर

आधु ना मांजू बाते, कुदुरता भुई जे।।
कुदुरता भूई जे, सूरजा पंखेरू फेरी जे।।
एकी आ ना राणी जे, पेटे दो प्राणी जे।।

राह मध्य हुआ कुदरत चमत्कार
सूर्य देव की हुई दृष्टि निपात
रानी अब थी पैरों से भारी

एकी आ ना राणी जे, धारा ऊपरू पहुंची जे।
धारा ऊपरू पहुंची जे सूझूणे लागी जे।।
सूझूणे लागी जे, सोना टीका जामी जे।
सोना टीका छाड़ी जे, अप्पू पेऊके दौड़ी जे।।

रानी एक, पहुंची शिखर धार
शिखर धार पर हुई प्रसूति
जन्मा एक स्वर्ण कुंवर
त्याग स्वर्ण कुंवर
रानी ने किया पीहर पलायन

वीरा ना भाई जे, पूछूणे लागी जे।।
आयो मेरी बेहीणी जे, नांगे आयो बेहीणी जे।।
प्यासे आयो बेहीणी जे, भूखे आयो बेहीणी जे।।

देख बहना हाल बेहाल
वीर भाई ने पूछा हाल
आओ मेरी प्रिय बहना
आई हो क्या नंगी भूखी या प्यासी।

ना ओ आयो नांगे जे, न ओ आयो प्यासे जे।।
ना ओ आयो प्यासे जे, न ओ आयो भूखे जे।।

रानी ने सुनाया सारा हाल
न आई नंगी भूखी न ही प्यासी।

शौ ए शौ ए राणी जे, बिबुता ना पेईजे।।
एकी आ ना राणी जे, पेऊके आ नू दौड़ी जे।।
आधु ना मांजू बाते, कुदुरता भूई जे।।
कुदुरता भूई जे, सूरजा पंखेरू फेरी जे।।
एकी आ ना राणी जे, पेटे दो प्राणी जे।।
एकी आ ना राणी जे, धारा ऊपरू पहुंची जे।।
धारा ऊपरू पहुंची जे, सूझूणे लागी जे।।
सूझूणे लागी जे, सोना टीका जामी जे।।
सोना टीका छाड़ी जे, अप्पू पेऊके दौड़ी जै।।
फेटो-फेटो बेहीणी जे, मैंड़ी भाणिजा छाड़ी जे।।
वीरा न मामा जे, नंगे पैरे दौड़े जे।।

अफसोस बहना अफसोस।
तू ने त्यागा मेरा भांजा
वीर मामा नंगे पांव
दौड़े निज भांजे की खोज

आधु ना मांजू बाते, गिदड़ा राजा मेड़ी जे।।
फेटो-फेटो गिदड़ा राजा, मेड़ी भणिजा खाईजे।।
मैं ओ ना ओ खाई जे, पूछे भ्रबु राजा जै।।

फटकार तुम्हें फटकार है सियार
तू ने खाया मेरा भांजा
भांजा तुम्हारा मैंने खाया नहीं
पूछ लो आगे भालू राज।

वीरा ना मामा जे, नंगे पैरे दौड़े जे।।
आधु ना मांजू बाते भ्रबु राजा मेड़ी जे।।
फेटो-फेटो भ्रबु राजा, मैंड़ी भणिजा खाई जे।।
मैं ओ ना ओ खाई जे, पूछे सिंहा राजा जे।।

वीर मामा फिर से दौड़े नंगे पांव
राह में मिले भालू राज
तू ने खाया मेरा भांजा
मैंने खाया नहीं भांजा तेरा
पूछ लो सिंह राज

वीरा न मामा जे नंगे पैरे दौड़े जे,
आधु ना मांजू बाते सिंहा राजा मेड़ी जे।।
फेटो-फेटो सिंहा राजा मैंड़ी भणिजा खाई जे।।
मैं ओ ना ओ खाई जे, पूछे गरुड़ा राजा जे।

अफसोस सिंह राज
तू ने खाया भांजा मेरा
मैंने खाया नहीं भांजा तेरा
पूछ लो आगे गरुड़ राज

वीरा ना मामा जे, नंगे पैरे दौड़े जे।।
वीरा ना मामा जे धारा ऊपरू पहुंची जे।।
धारा ऊपरू पहुंची जे, कुदुरता हेरी जे।।

वीर मामा दौड़े नंगे पांव
वीर मामा पहुंचे चोटी धार
धार चोटी देखा कुदरत - चमत्कार

गरुड़े कीती छावां जे, सरपे दीती पेहरा जे।।
सरपे दीती पेहरा जे, मूशे दीती चू चू जे।।
वीरा ना मामा जे, दांडोता कीती जे।।
खोका कीती भणिजा जे, अप्पू घरे दौड़ी जे।।

गरुड़ ने की थी छांव
सर्प बना था पेहरेदार
सर्प बना था पेहरेदार
मूषक करा रही थी स्तन पान।

प्रकृति में शत्रु एक दूजे के
कुंवर स्वर्ण के पालन में
यहां जुटे थे तीनों मिलकर
देख कुदरत का चमत्कार
वीर मामा ने किया दंडवत प्रणाम
खोक में डाल भांजा
मामा ने किया घर प्रस्थान ■

जरड़, भुट्टी कॉलोनी।

लेखकों से निवेदन

लेखक बन्धु/भगिनियों से निवेदन है कि आप चन्द्रताल के आगामी अंकों के लिए अपनी अप्रकाशित कविता, कहानी, लेख आदि प्रकाशनार्थ भेज कर हमें अनुगृहीत करें। लेख के साथ अपना तथा लेख के विषय से सम्बन्धित फोटो भी अवश्य भेजने की कृपा करें ताकि पत्रिका के गेटअप को और बेहतर बनाया जा सके। धन्यवाद।

–सम्पादक

लोट गांव का खोगल त्यौहार

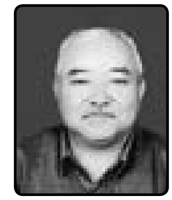

रणवीर शाशनी

लोट गांव जिसे सामान्यतः ''लोप्पे'' नाम से जाना जाता है, लाहुल जनपद का 28/29 टोल/परिवार का एक छोटा सा गांव है। यह समुद्रतल से करीबन 9650 फुट की औसत ऊंचाई पर, 32^0, 35850 उत्तरी अक्षांश और 0.76^0,56651 देशान्तर पूर्व में स्थित है। इस गांव में तीन समुदायों के 250/300 के आसपास लोग रहते हैं। दो सवर्ण और एक अवर्ण समुदाय के, किन्तु सभी तीज-त्यौहार और धार्मिक बाह्य कार्यों में तीनों समुदाय के लोग मिलकर भाग लेते हैं। विशेषतः मेलिङ जागरा, केलिंग देवता का जागरा और ''खोगल'' जिसे लाहुल के अन्य घाटियों में ''हल्डः'' के नाम से भी जाना जाता है, उस दौरान यहां एक समुदाय इसे ''दियाली'' भी कहता है। अगर ''लोप्पे'' शब्द का अर्थ ढूंढा जाए तो 'लौप'अ' शब्द इसके नज़दीक बैठता है, जिसका भोटी में अर्थ है सहायक पुजारी {assistant priest}- अर्थात् लोप्पे वह गांव जहां कभी सहायक पुजारी रहता था। लोप्पे से लोट इसलिए नाम पड़ा क्योंकि उर्दू में जब 'लोप्पे' लिखा गया तो क्योंकि शिखस्ता अर्थात् {cursive writing} में उर्दू कई बार पढ़ने में पर्याप्त कठिन होता है। मात्र बिन्दियों के हेर फेर से कुछ का कुछ और ही पढ़ा जाता है। अतः लोप्पे के 'पे' को 'टे' पढ़ा गया या यूं कहो कि 'लोप्पे' से लोटे' पढ़ा गया। इस प्रकार अंग्रेज़ी में Lote लिखा गया और आज भी ऐसा ही चलन में है। लोट गांव ''लौप'अ'' परिवार और उनके अन्य भग्याड़ ''लोनचेन्प'अ'' अर्थात् ''मो'ड़े रूहुस'' अर्थात् 'बड़े कुल' से सम्बन्ध रखते हैं, जिनका कभी गांव के पूजा-पाठ में अहम भूमिका रही है। वैसे भी एक परिवार का नाम ''लोप्प'अ'' अवश्य है और वे ''लोनचेन्प'अ रूहुस'' अथवा 'गोत्र' के ही हैं।

इस वर्ष अर्थात् सन् 2016 का खोगल 23 जनवरी को मनाया गया। सामान्यतः मूलिङ से लेकर, पूरी पटन घाटी के सभी गांवों में, उदयपुर-तिन्दी तक, इस त्यौहार को एक साथ एक ही दिन मनाने का रिवाज़ है। इस त्यौहार का शुभागमन प्रायः लाहुली देसी महीना ''ज़ङल्ह'अ'' अर्थात् स्वर्ण-मास के पूर्णमाशी के दिन होता है। या यूं कहें, देसी महीना, माघ की प्रथम पूर्णमाशी के दिन, जो कभी किसी वर्ष जनवरी महीने में या कभी फरवरी महीने में भी इसका आगमन होता है, वैसे हर वर्ष ''उत्ल'अ'' अर्थात् 'मकर-संक्रांति' या 'पौंगल' या 'लोहड़ी' के 13/14 दिन बाद ही आता है।

जिस तरह लोहड़ी को अग्निपूजा माना जाता है या होमने का पर्व, जिसे माघी भी कहा जाता है, वैसे ही 'खोगल' भी अग्नि और रोशनी का पर्व तो है ही, साथ ही साथ, यह पित्तर पूजा और घरशिड़ी और अन्य देवी-देवताओं के पूजन का तथा नकारात्मक ऊर्जा के विसर्जन का पर्व भी है। इन देवी-देवताओं में प्रमुख हैं, नाग-देवी 'सलम' जो बहुत सारे गांव वासियों की कुलज मानी जाती है, जिनका मन्दिर 'यङरङ' (अर्थात् एक और 'रङ' अर्थात् एक और जोत) में है। माता-मराड़ी (माता पार्वती का एक रूप), तथा केलिंग बजीर अर्थात् (कार्तिकेय जी), इन दोनों का थान लोट गांव के थोड़ा ऊपर हैं। (माता मराड़ी और केलिंग बजीर के मन्दिर हमेशा साथ-साथ ही होते हैं, ये कभी अलग नहीं होते। मां और बेटा क्या कभी अलग हो सकते हैं?), और देवाधिदेव महादेव जी, जिनका मन्दिर मेलिङ गांव में है।

शायद बहुत ज़्यादा बर्फबारी, शरदकालीन लम्बी सर्दी, धूप का अभाव, उबाऊ रोज़मर्रा का जीवन, चारदीवारी के भीतर सिमटा हुआ एकाकी सा जीवन, इस त्यौहार के आने पर उन दबी-छिपी कुण्ठित मनों को अपनी भड़ास निकालने का पूरा अवसर मिल जाता है और यह कहीं न कहीं आवश्यक भी है।

आज के युग में कई कारणों से इस त्यौहार को मनाने के तरीके में बदलाव आ चुका है। वरना लोट का खोगल पूरे लाहुल घाटी में पर्याप्त मशहूर रहा है और सुना है ठाकुरों के शासन काल में कोई ठाकुर इसे देखने स्वयं आए और खुश होकर, स्तिङरी के जंगल से हर साल एक देवदार का पेड़ काटने की अनुमति तक प्रदान कर दी थी, ताकि लोट वाले इस त्यौहार को खूब शान-ओ-शौकत से मना सकें।

^[kksXyk.k*...खोगल के आगमन से एक सप्तह पूर्व ''खोग्लाणु'' आता है.. खोग्लाणु शब्द खोगल का आगमन सूचक शब्द है..इस दौरान ''खोग्लाणु'' राग बजाने का रिवाज़ है। गांव के युवा वर्ग, मुख्यतः लड़के इसे बजाने के लिए लालायित रहा करते थे। आजकल यह रिवाज़ लगभग समाप्त है। नौ-ग्रह के नगाड़ा रखने वाले के घर के छत पर नगाड़े के ''त्स'ङ'अ'' अर्थात् तीखी आवाज़ वाले हिस्से को अनाज के सूखे डण्ठलों की आग में 'तोउणि' देकर अर्थात् तपा कर इसकी आवाज़ को तीखी करवाई या फिर यूं कहें नगाड़े की ढीली चमड़ी को कसवाई जाती है। तब कोई बुज़ुर्ग नगाड़े को दो बेलणियों अर्थात् ब्यूंस की लकड़ी के दो डण्डों से बजाता और

मुख से बोलता.. ''त्स'ङुटि, मङुटि त्स'ढुम'अ, ढुम'अ, ढुम्म''..बस इसके अनुसार ही नगाड़े से आवाज़ बजा कर निकालनी होती थी। सीखने की उत्सुकता, खोगल के आगमन का उमंग, कुछ कुतूहल, नगाड़ा बजाने में ये सब भाव जागृत होते थे, कुछ घरों में 'खोग्लाणु' अंकित करने का रिवाज़ भी है। जिसमें ''प्याह-प्यूत्स'अ'' अर्थात् चिड़िया और चूहे के चित्र मुख्य-द्वार पर बनाए जाते हैं।

^^gYG*v c*fYM**.. खोगल से एक दिन पूर्व यह दिन आता है। इस दिन देवदारु की लकड़ी के लट्ठ फाड़ने का काम दिन को ही किया जाता है। घर की लिपाई-पुताई कुछ दिन पहले ही की जाती है। घर के सभी लोग नहा धो लेते हैं। शाम को घर का मुखिया, धूण-धुपौती और दिया-बाती कर ''घरशिड़ि'' की पूजा-पाठ करते हैं। घर के अन्दर ही अधफाड़ी लकड़ी को शागुण के बाद, पुनः बारीक चीरी जाती है। जब भी ''चुत्स'अ'' अर्थात् बसूला से पहला वार करते हैं उस वक्त ''सद-माह् सुम्हरिके'' अर्थात् इष्ट देवी-देवताओं का नाम लेकर या सुमिर कर यह काम बहुत ही श्रद्धा-भाव से किया जाता है। शागुण के बाद ''हल्ळ'अ बे'ल्ड्राड़'' अर्थात् हल्ळ'अ फाड़ने वाले को सूखे गेन्दे का एक फूल दिया जाता है। जिसे वह श्रद्धा-भाव से ग्रहण कर, ढाल जी कह कर ''टोबुडू ब'अल-रिङ'' अर्थात् टोपी के मुड़े हुए हिस्से में डाल लेता है। हल्ळ'अ फाड़ने वाले के माथे/कपाल के दायें हिस्से पर 'थ्सुङ्मर' डाला जाता है, फिर वह ढाल जी कह कर उसका स्वागत करता है। ....''हल्ळ'अ थ्सुङ्ज़ि''.......जब हल्ळ'अ चीरने फाड़ने का काम समाप्त हो जाता है, तो उन्हें थ्सुङ्ज़ि अर्थात् चीरी हुई पतली लकड़ियों को एक मशाल के तौर पर गट्ठर में जोड़ने या बांधने का काम होता है। इसके लिए इसी वर्ष की बीती गर्मियों में उगी हुई बेली की पतली टहनियों को काम में लाया जाता है। इसे बीच से चीर कर काम में लाया जाता है। बुज़ुर्ग लोगों के हाथ इस काम के लिए सधे हुए होते हैं, क्योंकि पुराने ज़माने में टोकरियाँ, किल्टे, झीण (बड़ी टोकरी) आदि सभी चीज़ें जो घरेलू उपयोग की होती थी, वे सभी इसी ब्यूंस की पतली टहनियों को दोफाड़ कर बुने जाते थे। अब हल्ळ'अ, ''शिर'अ'' अर्थात् घर के पुरुष-वर्ग की कुल संख्या के दुगुने के बराबर ही त्यार किए जाते हैं। आज के युग में ''हल्ळ'अ'' निकालना अब एक ''थित्या'' अर्थात् मात्र रस्म-अदायगी का काम रह गया है। वह भी समाप्ति के कगार पर है...... खोगल के दिन औरतें साफ-सफाई और तरह-तरह के पकवान बनाने में जुट जाती हैं। मर्द दीप-बाती त्यार कर के गांव में 'चिप्यक्सि' अर्थात् लोगों से भेंटने के लिए जाते हैं। गांव के दो परिवारों अर्थात् लम्भर और भुतुङरु के वहां बारी-बारी दोनों घरों में सभी लोग जाते हैं। वहां सब की आदर-खातिर की जाती है। शुरुआती दौर शागुण से, फिर खाने-पीने की चीज़ों से (जिसमें शराब-लुगड़ी भी शामिल होती है) आव-भगत की जाती है। सुबह 12 बजे से शाम के 5 बजे तक लम्भर परिवार के यहां, फिर शाम के 5 बजे से करीबन 8 बजे तक भुतुङरु परिवार के वहां रहा जाता है। क्योंकि 8 बजे के बाद, हल्ळ'अ अर्थात् मशाल निकालने का कार्यक्रम शुरू हो जाता है। चिप्यक्सि के दौरान, घीत-घुरे, नाच-गाना सब कुछ होता है। नाच-गानों के दौरान लोग मस्ती में दूसरों को और उत्साहित करने के लिए यह कहते हुए भी सुने जाते है। ''नाचो-नाचो ऐसे नाचो कि पिघल जाओ ..या फिर फिर ऐसे नाचो कि मोती की लड़ी बन जाओ''। खोगल के दूसरे दिन से चिप्यक्सि का सिलसिला सप्ताह भर चला रहता था। किंतु अब इस प्रथा का अंत हो गया है ....लोट में कुल छह बार हल्ळ'अ निकाले जाने का रिवाज़ है। हल्ळ'अ निकालने से पहले, घर के सभी कमरों की खिड़कियों में 'संज्चा' अर्थात् गुंधे आटे के दिए प्रज्वलित किए जाते हैं। घरशिड़ि पूजन भी किया जाता है। फिर एक ''त्रिह्या'' अर्थात् त्रिपाद के नीचे आग जलाई जाती है, ताकि उस आग में हल्ळ'अ ''षेड्रि'' अर्थात् तपा कर सुखाया जा सके। दिन को ही ''पो'राख'' अर्थात् काठू के आटे को 'एस्कद' अर्थात् हैण्डल लगा हुआ बड़े से तवे में तल कर चूर्णनुमा पो'राख त्यार किया जाता है। जिसे जलती मशाल पर फैंकने से मशाल और प्रज्वलित होकर अत्यधिक प्रचण्डता से जलने लगती है। अब शुरू होता है हल्ळ'अ निकालने का सिलसिला......सबसे पहला हल्ळ'अ ''मो'टल्ड्र'अ हल्ळ'अ'' अर्थात् जिसे किसी दिवंगत नन्ही जान की याद में घर के आस-पास ही निकाला जाता है। इसे घर की बेटी या कोई भी औरत निकाल सकती है। बच्चे भी शामिल हो सकते हैं। एक हाथ में जलती मशाल, दूसरे हाथ में कांसे की थाल में सजा कर घर के सारे पकवान का अंश ले जाया जाता है। मशाल को गाड़ने के बाद, भोजन के अंश को अग्नि में उस दिवंगत आत्मा के नाम समर्पित किया जाता है। इस हल्ळ'अ के लिए कोई निर्धारित वक्त नहीं है। इसे सांझ होते ही निकाला जाता है।

दूसरा है...'देफ' या ''पित्तर हल्ळ'अ''....पित्तर तो नाम से ही स्पष्ट है। वैसे पित्तरों को देव तुल्य ही माना जाता है। शायद इन्ही कारणों से देव का बिगड़ा रूप 'देफ' है। इसे दक्षिण दिशा में ले जाते हैं। जिन-जिन परिवारों के सामूहिक पित्तर हैं, वे एक निश्चित स्थान पर निश्चित रास्ते से ही अर्थात् 'सिद-अम' अर्थात् मृत्यु के बाद शव को ले जाने वाले रास्ते से ही ले जाते हैं। (वैसे भी लोट का श्मशान-घाट गांव के दक्षिण दिशा में है, जो कि अधिकांश गांववासियों का श्मशान घाट है। दो भुतुङरु परिवार का 'दोरन'--{ओ का यहां ह्रस्व रूप है} के नीचे तथा अवर्ण समुदाय का अब लोटनाले के पुल के समीप श्मशान-घाट बनाया गया है।) प्रायः पति-पत्नी, या फिर बेटा-बेटी द्वारा ही इस हल्ळ'अ और त्यार शुदा पकवानों के सभी अंश एक कांसे की थाल में सजा कर ले जाए जाते हैं। जिनके सांझे पित्तर न हों तो वे अपने घर के आसपास ही, सिद-अम के साथ ही हल्ळ'अ और पकवान की थाल लेकर आते हैं।

जलती मशाल को बर्फ में गाड़ कर, पित्तरों के नाम भोजन के सभी अंश अर्पित कर, बचे हुए पकवानों को 'कुल्ड्रारे' अर्थात् बजंतरियों में बांटा जाता है। (शांशी परिवार और सोहुकार परिवार कुल चार टोल के सांझे पित्तर हैं, कुछ परिवार शामिल नहीं हैं। भुतुङरु तीन परिवारों के और ल्हर्जाऊं तीन परिवारों के अपने-अपने सांझे पित्तर हैं।) इसी लिए हर वर्ष पित्तर हल्ळ'अ एक ही स्थान पर निकालते हैं, हर घर का एक मर्द (प्रायः पति या घ्यात अर्थात् गृहात, घर का मुखिया) मशाल लेकर और औरत (प्रायः पत्नी या घरनी अर्थात् घरनी या गृहणी, घर की मालकिन) पकवान की थाली लेकर निश्चित रास्ते से निश्चित स्थान पर आते हैं। मशालों को सामूहिक तौर पर गाड़ कर, जलती आग में अपनी-अपनी थाल के भोजन के अंश को पित्तरों के नाम अर्पित करते हैं। बाकी बचे हुए साफ भोजन के अंश को बजंतरियों में बांट दिया जाता है। ये बजन्तरी भुतुङरु परिवार के आंगन में आग जलाकर नगाड़ा और बांसुरी पे तरह-तरह के राग बजाते रहते हैं। पित्तर हल्ळ'अ लगभग हर साल 8 बजे शाम को निकाला जाता है। मो'टल्ड्र'अ और पित्तर हल्ळ'अ दोनों, गांव के सामूहिक हल्ळ'अ नहीं हैं। इसलिए इनको निकालने के लिए कोई समय लामा जी द्वारा निर्धारित नहीं, बाकी हल्ळ'अ को निकालने में घण्डाड़ लामा समय निर्धारित करते हैं। उनके द्वारा हल्ळ'अ निकालने के बाद ही पूरे गांव के सामूहिक हल्ळ'अ निकालने का सिलसिला शुरू हो जाता है, क्योंकि पट्टन के अधिकांश गांव-वासियों को गुरु घण्टाल दिखता है। जब वहां हल्ळ'अ निकाला जाता है तो उसके बाद ही हल्ळ'अ अन्य गांवों में निकाले जाते हैं। वैसे घण्टाल के अधीन मूलिंग से लेकर लोट तक के ही गांव आते हैं।

तीसरा हल्ळ'अ..''स'द-हल्ळ'अ'' अर्थात् देव हल्ळ'अ, या कहें देवता की मशाल को गांव के पूर्व दिशा की ओर निकाला जाता है। इस हल्ळ'अ को क्रोंउक अर्थात् चौकीदार के पुराने घर के आंगन में एक बड़ा सा शिला है, उस पत्थर के आगे, नगाड़े और बांसुरी के सर्वबाहण राग पे, पंक्तिबद्ध विधि से नाचते हुए निकाला जाता है। हल्ळ'अ निकालते समय खूब ज़ोर-ज़ोर से 'हल्ळ'अ ओ हल्ळ'अ' का उद्घोष किया जाता है। शिला के साथ बर्फ में मशाल गाड़े जाते हैं। शुर और 'छ्वा' नाग देवी 'सलम' और नाग देवता के नाम अग्नि में अर्पित किए जाते हैं। पुरुष वर्ग नाचते गाते हुए इस अवसर का मज़ा लेते हैं। औरतें और बच्चे दर्शक होते हैं। फिर हंसी मज़ाक के साथ, ''भत्क'अ ओ भत्क'अ'' के शोर शराबे के साथ मशाल निकालने वाले सफेद बर्फ के चूर्ण को एक-दूसरे पर फैंकते हैं। इस अवसर का फायदा औरतें और बच्चे भी उठाते हैं। खूब शोर-शराबा और ठहाके छूटते हैं, जब कोई बर्फ से सराबोर हो जाता है। ''भ'त्क'अ'' अर्थात् भात खा शब्दों का संक्षिप्त रूप लगता है। किंतु यह हंसी-मज़ाक थोड़ी देर के लिए होता है। अब चौथे हल्ळ'अ के लिए सभी को अपने-अपने घर जाना पड़ता है।

चौथा हल्ळ'अ भी एक और स'द-हल्ळ'अ होता है जो देवाधिदेव महादेव को समर्पित है। इसे 'थलिङ' के 'ग्रचिल' नामक 'रूही' अर्थात् खेत के बीचों-बीच, उत्तर दिशा की ओर ले जाया जाता है। यहां से मेलिङ महादेव जी का मन्दिर स्पष्ट नज़र आता है। 'कुल्ड्रारे' अर्थात् बजन्तरी महादेव का राह्ग बजाते रहते हैं। ये उस स्थल तक नहीं आते जहां मशाल ले जाए जाते हैं। यह हल्ळ'अ महादेव जी को समर्पित है। इसी लिए उनका नाम लेकर जयकारियां दी जाती हैं। खेत के लगभग केन्द्र में ले जाकर, मशालों को बर्फ में गाड़ कर, उन जलती मशालों के ऊपर 'शुर' और 'छ्वा' महादेव जी के नाम पर अर्पित किए जाते हैं। कुछ देर आग तपा लेने और नाच गा लेने के बाद एक-दूसरे पर बर्फ के चूर्ण फैंके जाते हैं, और ''भ'त्क'अ ओ भ'त्क'अ'' का उद्घोष करते हुए खूब आनन्द और मस्ती के साथ यहां से लौटने लगते हैं। बजंतरी राग बजाते रहते हैं और यहां से वापस गांव के बीचोंबीच स्थित ''म'ड़'अ'' अर्थात् गांव के बीच स्थित खुली जगह में, 'कुसुम्ज़'अ' अर्थात् खुदाई किया गया बहुत बड़ा वृत्ताकार सा पत्थर जिस के बीच में अनाज के दानों के छिलके एक बड़े मूसल से कूट कर अलग किया जाता था या फिर डोड़ो आदि पीसा जाता था, उसके पास जहां आग जलाई गई होती थी, वहां बैठ कर बजंतरी पांचवें हल्ळ'अ अर्थात् ''न'म्ह हल्ळ'अ'' की प्रतीक्षा करते थे। अब यहां महिला-मण्डल भवन बनाया गया है। केवल दो हल्ळ'अ जिन्हें ''स'द हल्ळ'अ'' कहा जाता है, बाकी हल्ळ'अ में भी ''शुर-तु-'ढकि'' अर्थात् देवदारु की एक हरी या सूखी डाल, डाली जाती हैं, 'नम्ह' का अर्थ है मैल अर्थात् यह हल्ळ'अ एक तरह से पूरे गांव का 'टाड़ाह्' अर्थात् गांव के मैल का या नकारात्मक ऊर्जा का विसर्जन है। हर घर से जब मशाल निकाला जाता है तो घर के मुख्य डेवढ़ी लांघते ही ''झा हाः'' का उद्घोष अर्थात् शायद 'स्वा हाः' का बिगड़ा शब्द हो और 'फिउकारा' अर्थात् ज़ोर की सीटी बजाई जाती है। एक थैले में 'पोराख' और दूसरे में थोड़ा 'शुर', 'छ्वा' तथा 'ल्वाड़' अर्थात् क्रमशः देवदारु के पत्ते, अनाज, और चिलड़ा और एक टुकड़ा 'शाह' अर्थात् मांस का टुकड़ा आदि लेकर सभी गांव वासी गांव के बीच से बने गलियारों से जब नगाड़े और बांसुरी के ''बट्ट-बाहण'' राह्ग पर नाचते गाते हुए और लोगों के शोर शराबे के बीच गुज़रने लगते हैं तो यह दृश्य काफी मनोरम लगता है। इन मशाल वालों के साथ गांव के बच्चे, बूढे, युवा, युवतियां सब शामिल हो जाते हैं। कोई झाहाः, कोई सीटी बजा रहा होता है और पोराख फैंक कर जलती मशाल की ज्वाला को और भड़का देता है। इस बीच नोक-झोंक वालों के खूब मज़े होते हैं। वे या तो एक-दूसरे के मशालों पे या फिर अपनी मशाल की ज्वाला पे पोराख फैंक कर दूसरे को चौंका देते है। इस हल्ळ'अ को 'भुतुङरु' अर्थात् 'शासक परिवार' जिन्हें 'ल्हेदोरे' अर्थात् 'निचले वाले' भी कहा जाता है जो केलिंग देवता के पुजारा

भी हैं, उन के आंगन से होकर 'लम्भर' परिवार या 'नुशदो' अर्थात् 'परे वाले' के 'परछद' नामक 'रूही' अर्थात् खेत (लाहुल के सभी खेत और खलिहान का कोई न कोई नाम होता है देखा जाए तो अजीबो-गरीब नाम, पर इनका भी अवश्य ही मतलब होता है, बिना मतलब के कुछ नहीं -ऐसा ही चलन शायद पूरे भारत-वर्ष में है या शायद विश्व भर में भी, यह भी एक अध्ययन का विषय है। के बीचों बीच ले जाया जाता है, जो लगभग गांव के पश्चिम दिशा में है, हल्ळ'अ गाड़ने के बाद शुर, छूवा, चिलड़े और मांस के टुकड़े अग्नि में अर्पित किए जाते हैं, अर्थात् पूरे गांव की नकारात्मक ऊर्जा को स्वाहः किया जाता है। अब यहां एक और खेल शुरू होता है, नव-विवाहित युवा, संतान-प्राप्ति की चाह वाले, यहां जलती मशाल को घुमा कर फैंकने लगते हैं, बाकी सभी खूब शोर शराबा और जयकारियों का उद्घोष कर उन भाग्य आज़माईश करने वालों का उत्साहवर्धन करते हैं, ताकि वे बाधा को पार कर सकें, जो भी उस खेत के दूसरे सिरे को पार कर रुड़िङ की ओर फैंक पाए तो माना जाता है कि आगामी वर्ष उनको संतान-प्राप्ति होगी, सभी उनको बधाई देने लगते हैं, फिर शांत माहौल में वापस लौटने लगते हैं। लौटते समय ज़्यादा शोर-शराबा अब नहीं होता है, न ही ''भत्क'अ ओ भत्क'अ'' की किलकारियां सुनाई देती हैं। भुतुङरु परिवार के घर से ज्यों ही आगे बढ़ने लगते हैं तो लोग 'बल्कि हो बल्कि, बल्कि बशो हो बल्कि बशो' का नारा लगाते हैं, कुछ लोग 'ब्योउ-गीत' (विवाह-गीत) भी गाते हैं, अर्थात् मंगल गीत।

अब छटा और आखिरी हल्ळ'अ जिसे ''कर्छो'ल हल्ळ'अ'' कहा जाता है उसे गांव की औरतें या फिर 'मोटियालिरे' अर्थात् गांव की मुटियारिनें निकालती हैं। इस दौरान बजंतरी ''शागुणो राहूग'' बजाते हैं। सनात बालाएं या औरतें एक-एक मशाल और एक-एक 'लोड़कि' अर्थात् एक-एक लोटे में 'त्सक्ति' अर्थात् लुगड़ी जिसके मुंह पर 'थ्सुङ्मर' अर्थात् चिकौटी भर मक्खन की फुनगियां लगी होती हैं। उन लबालब भरे लोटों को लेकर कतार में खड़ी होती हैं। वे सब लोट के सोहुकार घर के आगे 'कुम्भ' में (अर्थात् पवित्र घड़ा जिसे यहां दफनाया गया होता है, जिसे देवी-देवताओं के ठहराव/पड़ाव का स्थान माना जाता है) इकट्ठा हो जाते हैं। यह गांव के लगभग केन्द्र में है। (राजा घेपङ को भी उनकी यात्रा के दौरान यहीं इनके आंगन में बिठाया जाता है।) मशालों को गाड़ कर रखा जाता है, सभी मशाल निकालने वाले मर्द और युवा बारी-बारी से शागुण करते हैं। इस जगह आध-पौन घण्टे तक 'योन्द्र'अ' अर्थात् नाच-गाना होता है, कोई नगाड़े पर थाप देता है और कभी-कभी औरतें जो गा सकती हैं वे गीत गाती हैं, बाकी उनका ''ल'अ'न'' अर्थात् जवाब, गीत के बोल दुहरा कर देते हैं और युवा एवं मर्द उन मशालों के गिर्द खूब नाचने लगते हैं, जब सब कार्यक्रम समाप्ति की ओर होता है तो घर वापस जाती बार एक-दूसरे को 'नाग्यालि बोड्शे अतञिओ' अर्थात् कुन्बे की खूब वृद्धि होने की एक-दूसरे को दुआ देते हैं। सभी हल्ळ'अ निकालने वाले जब घर वापस पहुंचते हैं तो घर का एक सदस्य एक लोटे में पानी, कोयला और राख के घोल को उन सभी के सिरों के ऊपर से 'थापिके' अर्थात् सिर के ऊपर से घुमाकर वहीं घर के बाहर उंडेल देता है, ताकि कोई नकारात्मक ऊर्जा उनके साथ घर के भीतर प्रवेश न कर सके। घर में घ्यात-घरनि 'कल-पितङ शागुणिक्ट्रि' अर्थात् खिड़की और द्वार पूजन करने लगते हैं। (वैसे खिड़कियों का पूजन नहीं किया जाता है) एक कांसे की थाल में घर के सभी पकवान के कुछ भाग जिसे अकसर सजी-धजी औरत और एक ''धुणकड़्थ्सि'' अर्थात् धूण की कड़छी जिसे अक्सर मर्द उठाता है, मुख्य द्वार का पूजन सबसे पहले उसके बाद भीतर के द्वार और फिर अंततः 'घरशिड़ि' अर्थात् गृह-श्री का पूजन किया जाता है। उस दिन के पकवान के अंश को तीन बार तर्जनी और अंगूठे से द्वार के चौखट पे चिपकाये जाते हैं और धूण दी जाती है। सभी द्वार पूजन और घरशिड़ि के पूजन के बाद धुणकड़्थ्सि घर के बाहर छोड़ी जाती है। इसके बाद ही उस रात का खाना अर्थात् त्यौहारी भोजन का रसास्वादन किया जाता है। इस प्रकार चार हल्ळ'अ चारों दिशाओं में और अंततः एक गांव के केन्द्र में निकाला जाता है और एक मोटल्ड्र'अ हल्ळ'अ, ये हो गए कुल छह, कुछ घरों में इस दौरान 'बराज़ा' स्थापित करने का रिवाज़ है तथा कुछ घरों में 'खोग्लाणु त्सेत्सि' करने (अंकन) का रिवाज़ भी है। वैसे बराज़ा आम तौर पर कुस के दौरान ही सजाये व लिखे जाते हैं। बराज़ा 'ठेह्ट्रि' करते समय कुछ हल्ळ'अ आड़े-तिरछे रख कर सिरों को एक-दूसरे पर टिका कर रखे जाते हैं। उस के सामने दिया-बाती और 'मार्चु' अर्थात् पूरियां और कुछ अन्य पकवान भी रखे जाते हैं। बराज़ा जिसका सन्धि-विच्छेद कुछ लोग बा+रज़्ज़ा अर्थात् वामन अवतार विष्णु जी के तौर पर करते हैं, कुछ लोग बराज़ा अर्थात् बलि+राजा अर्थात् दानव राज महाबलि के तौर पर करते हैं। वैसे अधिकांश लोगों के अनुसार दानव राज बलि के नाम ही बराज़ा नाम रखा गया माना जाता है। कुछ लोग लिखे हुए बराज़ा में जो आदमी का चित्र है उसे 'गद्दी' कह कर भी सम्बोधित करते हैं। अंकित चित्र में मानव के प्रतीक को यदि राजा बलि माना जाता है तो स्थापित किए बराज़ा को हम 'शिखर अप'अ' अर्थात् मां लक्ष्मी रूपा मानते हैं। जिन्हें नेपाल और तिब्बत में 'पल्दन ल्हमो' अर्थात् मां श्रीदेवी के रूप में लोसर के दौरान पूजते हैं। कई बार मन में खयाल आता है कहीं 'बराज़ा' शब्द 'बर'अ+रण्ड्राड़' शब्दों के मेल से तो नहीं बना है..? अर्थात् दोनों बराज़ा से बर ही मांगे जाते हैं। इस पर थोड़ी सी चर्चा, अलग से करना चाहूंगा।

चिप्यक्सि के दौरान, समय का सदुपयोग ऐसे होता है। शांत माहौल में, ऐसे अवसरों पर कथा सुनाए जाते हैं व कुछ 'विम शत्सि' अर्थात् पहेलियां बूझी जाती हैं या फिर कुछ दिमागी कसरत के लिए

लोट खोगल में पित्तर-पूजा के समय लिया गया चित्र

'समीकरण के सवाल' हल करने को दिए जाते। बड़े-बूढ़े हालांकि वे पढ़े-लिखे नहीं थे, न जाने कहां से उनके मन में ये खयाल आते थे, जैसे एक सवाल था, ''तन्दू'र'' में (अर्थात् सर्दियों का गर्म कमरा), और ''षे'ल्थ्स'अ'' में (अर्थात् गर्मियों का ठण्डा कमरा) कुछ लोग हैं, जिनकी संख्या का अनुमान आपने लगाना है। यदि तन्दूर से एक आदमी षेल्थ्स'अ में चला जाए तो संख्या दोनों कमरों में बराबर हो जाती है, और यदि षेल्थ्स'अ से तन्दूर में एक आदमी आ जाए तो तन्दू'र में बैठे लोगों की संख्या षेल्थ्स'अ के मुकाबले तीन गुना हो जाती है, तो बताइये तन्दू'र और षेल्थ्स'अ में कुल कितने-कितने लोग हैं..? या फिर कई बार यह अनुपात बदल कर भी पूछा जाता है और इस सवाल को एक अनपढ़ भी हल कर लेता था। है न हैरानी की बात। यह एक बहुत ही मनोरंजक और बुद्धि-कौशल को तेज़ करने का तरीका था। सभी बड़े चाव से इसमें भाग लिया करते थे। फिर कोई कहता अच्छा बताइये कुल 20 रोटियां हैं और औरतें, बच्चे तथा मर्दों की भी कुल संख्या बीस ही होनी चाहिए; तो कितने मर्द, कितनी औरतें और कितने बच्चों को कितनी-कितनी रोटियां एक-एक को देनी होगी, ताकि हिसाब-किताब 20 रोटियां और 20 ही लोगों की संख्या आए, आप चाहें आधी दो या पूरी या डेड़ सब आपकी मर्ज़ी, इसमें बड़ी सर खपाई होती... लेकिन हल नहीं निकलता आप भी आज़माइए न? या फिर सवाल कहीं गलत न हो, कुछ लोग ''ट'प्पा रण्ड्रि'' अर्थात् हाज़िर जवाबी में माहिर होते हैं.. उनकी बुद्धिमत्ता की सभी दाद देते और खूब हंसते क्योंकि ये लोग ऐसे-ऐसे जवाब देते, जो भी बोलने वाला है वह सम्भल कर ही बोलने की कोशिश करता...कई बार पहेलियां बूझने को देते...जिसे यहां की बोली में 'विम शत्सि' कहा जाता जैसे एक विम है...'नलि पो'के चो-चि ढिम' या फिर प्रचलित लोकोक्तियों या मुहावरों का अर्थ पूछा जाता, जैसे ''मक्क्ड़ो चे'ब'', ''पट'अ ग्वशे काकलो फ्या'ह''....''ज़किऊ घण्डाड़, म'किऊ खनाड़'' या फिर कुछ जिव्हा-मरोड़ शब्द अर्थात् [tongue twisters] भी पूछे जाते जैसे..'मरगुल, मगरूल, मंद्रुल' या 'छ्वा शिश्रिक्दा म'शिश्रिका...?' या फिर इन tongue twisters में तीन मिलते जुलते शब्दों को तीन-तीन बार द्रुतगति से दोहराने लगें तो जिह्वा फिसल ही जाती है। इस तरह न केवल भाषायी बल्कि गणितीय सवाल को हल करने की मौखिक क्रियाएं अत्यंत ही मनोरंजक और लोकरंजक खेल थे...

.......फिर कई बार चम्बा-चोराह के या कुल्लू के किस्से, गांव का कोई किस्सा, ठाकुरों के शासन काल के किस्से, आज़ादी के किस्से, बड़े-बड़े नेताओं, शहीदों के किस्से, मोरहा खेलने और मुकद्दमों के किस्से, लोट स्कूल के शुरुआती दौर की पढ़ाई और कुल्लू लग घाटी के अध्यापक श्री कुंज बिहारी लाल जी (जिन्हें 'ज़ोंहक' उपनाम दिया गया था बच्चों द्वारा उनकी बड़ी और लम्बी नाक के कारण) के किस्से, बुजुर्गों के युवाकाल में शरारतों के किस्से, न जाने क्या-क्या? हल्ळ'अ बेल्ड्रि के दिन ही कुस के लिए यौर'अ डाला जाता, ताकि 14/15 दिन में यह यौर'अ ठीक से खिल सके, पर इसे पर्दे में रखा जाता है ताकि इसका रंग हरा न होकर पीला ही रहे। एक हाथ में बुनी हुई ब्यूंस की पतली और लचीली टहनियों से बुनी हुई टोकरी में भेड़ की मींगणियों के बीच में जौ के बीज डाल कर, खूब गीला किया जाता है। रात के समय पर्दा हटाया जाता है, और तन्दूर के पास रखा जाता है। सोते समय दोबारा ढक दिया जाता है।

''म्हे'शुल''....अर्थात् ''मे'ह'' माने आग, 'शुल' माने शेष ..यह खोगल के दूसरे दिन अवर्ण समुदाय के द्वारा मनाया जाने वाला एक ग्राम्य मनोरंजन का कार्यक्रम होता था। इस दौरान वे बहुरूपिये बनते और तरह-तरह का स्वांग रच कर विभिन्न चरित्रों का अभिनय करके लोगों को हंसाना और नाचना-गाना और घर-घर जाकर घरनि-घ्यात को अपनी मज़ाकिये और हास्य-पूर्ण टिप्पणियों से खुश कर के अपना मतलब निकालना...जैसे एक टिप्पणी थी, 'घर्निउ टूड़िङ कस्तूरिउ बाहूस, घ्यातो टूड़िङ ल'क्शो बाहूस,' शायद, क्रमशः घरनी के स्त्रियोचित और घ्यात अर्थात् गृहस्वामी या गृहात के पुरुषोचित गुणों की ओर इशारा कर उनकी प्रशंसा की बात की जाती थी ताकि खाने-पीने की चीज़ों की वे उनसे ज़्यादा से ज़्यादा उगाही कर सकें, इस प्रकार हर घर से कुछ न कुछ खाने और पीने की चीज़ें वे इकट्ठा कर लेते, फिर सांझ को एकत्रित हो सभी मित्र-मण्डली उन पेय और खाद्य पदार्थों का मज़ा ले सकें। आज से करीबन 40/50 साल पहले एक-एक ''रे'न'' (लकड़ी का बना सेर, सवा सेर का पात्र जिसके द्वारा अनाज का मापन किया जाता था) 'छ्वा' अर्थात् अनाज इकट्ठा कर उसकी लुगड़ी बनाई जाती और कुस के बाद सामूहिक तौर पर पिया जाता था। यह ठीक वैसा ही था जैसे लोहड़ी मांगी जाती है। पर इस में युवा लड़के ही भाग लिया करते थे जबकि लोहड़ी तो छोटे बच्चे जिनमें बेटियां भी शामिल होती हैं।

इसी दौरान, आज से काफी अर्सा पहले, खोगल के समय, हवन का रिवाज़ गांव के प्रतिष्ठित बुज़ुर्गवार स्वर्गीय श्री सोमदेव जी द्वारा शुरू किया गया था, क्योंकि वे घुशाल के स्वामी ब्रह्म-प्रकाश जी के चेले थे, बाद में छह सात साल तक यह कार्यक्रम चलता रहा उसके बाद क्योंकि सोमदेव जी केलंग दुकान चलाने लगे फिर इसे लोट में जारी नहीं रखा जा सका। श्री सोमदेव जी में न केवल नेतृत्व की क्षमता थी बल्कि वे स्टेज के अच्छे कलाकार भी थे। रामायण-महाभारत के प्रसंगों को लेकर ग्रामीण कलाकारों द्वारा स्टेज प्रस्तुतियों को अंजाम दिया जाता था, वे गीतकार भी थे, ''देशो नौजवान, देश'अ केनो शूदे, देश'अ केनो योङरिङ इबि थ'रोंउ साहृदी ए'' गीत की रचना उन्होंने ही की थी। इसी गीत पर लोक-नृत्य की प्रस्तुति 'यम्बे' अर्थात् जाहलमां में विशेष अवसर पर दी गई थी। उन्होंने गांववासियों को राष्ट्र-प्रेम, देश के लिए कुछ कर गुज़रने की प्रेरणा की सीख इस गीत के द्वारा दी थी। 15 अगस्त अभी जिसे पूरे लाहुल का मेला माना जाता है उसकी शुरुआत का श्रेय अगर किसी को जाता है तो वे हैं श्री सोमदेव जी, जिन्होंने लोट में शुरुआत करवाई थी। याद आता है लोट गांव के 'पड़ाव' के मैदान में वे छोटी-मोटी अस्थाई दुकानें, होटल जहां जलेबियां, मोगू-मोगू, टाफियां, बिस्कुट और न जाने क्या-क्या रोज़मर्रा की आवश्यकता की वे सारी चीजें मिलतीं थी। अड़ोसी-पड़ोसी गांव के लोगों की चहलपहल, स्टेज पे तरह-तरह के कार्यक्रम विशेषतः देश-प्रेम और धार्मिक नाटक या सामाजिक प्रहसन या फिर लोकगीत आदि वह भी बिना माईक और लाउड-स्पीकर के। बाद में उनके केलंग जाने पर वहां 15 अगस्त जलसा की शुरुआत उन्होंने वहां की, जिसे आज जनजातीय मेले के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार देखा जाए तो खोगल न केवल अग्नि और रोशनी का पर्व हैं, बल्कि देवी-देवताओं और पित्तरों के पूजन का पर्व भी है, लाहुली समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक मूल्यों के आदान-प्रदान को तथा आपसी मेल-मिलाप से सामाजिक एवम् पारिवारिक रिश्तों को उम्र की वरीयता के अनुसार महसूसने और इन रिश्तों के ताने-बाने को और सुदृढ़ता प्रदान कर, एकात्मकता का भाव जागृत करने का पर्व भी है। साथ ही साथ सामूहिक तौर पर नकारात्मक और अवसाद-जनित ऊर्जा के विसर्जन तथा सकारात्मक ऊर्जा के उत्सर्जन व प्रसरण का व हर्षोल्लास के बाहरीकरण का उत्सव भी है। फलतः यह त्यौहार लाहुली जीवन को रसयुक्त बना देता है। इससे लाहुली समाज में एक नई ऊर्जा और उत्साह का संचरण तो होता ही है बल्कि यह उसकी जिजीविषा को और बलवती बनाने में भी सहायक है।

चित्रकार सुखदास जी हमारे बीच नहीं रहे

लाहुल के सुविख्यात चित्रकार, सच्चे अर्थों में एक गुरु और चिंतक आदरणीय सुखदास जी 29 जून, 2016 को 87 वर्ष की आयु में ईह लोक की यात्रा पूर्ण कर परलोक सिधार गए।

जाने माने चित्रकार सुखदास जी के चित्रों की प्रदर्शनियां देश के विभिन्न नगरों जैसा कि दिल्ली, अमृतसर, शिमला, कुल्लू, मनाली, केलंग (हिमाचल प्रदेश के जन-जातीय ज़िला लाहुल-स्पिति का मुख्यालय) आदि स्थानों में लग चुकी हैं। चित्रकला क्षेत्र में उत्कृष्ठ कार्य के लिए 21 जनवरी, 2003 को हिमाचल प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री वीरभद्र सिंह द्वारा राज्य सरकार की ओर से सम्मानित किए जा चुके हैं।

जहाँ हिमाचल प्रदेश के राज्य संग्रहालयों में इनके चित्रों को स्थान मिला है, वहाँ देश-विदेश के निजी आवास स्थानों में इनके चित्रों को स्थान मिला है। तत्कालीन प्रधान मंत्री भारत सरकार, श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने वर्ष 2006 में उनके चित्रों की प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। चित्रकार सुखदास को हर्ष था कि उन के दो चित्र श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी के निजी कक्ष में सुशोभित हैं। इस के अतिरिक्त देश के गण मान्य व्यक्तियों के पास उनके चित्र मौजूद हैं।

विदेशों में उनके चित्र पहुँच चुके हैं। जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी और स्विट्ज़रलैण्ड में उनके चित्रों को आदर के साथ रखा जाता है।

सुखदास जी का जन्म लाहुल के गाँव ठोलंग में 15 जून 1929 में हुआ। जहाँ चाह वहाँ राह वाली बात अक्षरशः सही है। छोटी आयु में ही सुखदास एक चित्रकार बनने की धुन को संजोये, चित्रकारिता का अभ्यास करते रहे। लोगों से रोरिक के चित्रों के बारे बातें करते ध्यान से सुना करते और बौद्ध लामा चित्रकारों को थंका चित्रण करते हुए मुग्ध होकर देखते रहते।

यद्यपि सुखदास स्वशिक्षित चित्रकार थे तथापि हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध चित्रकार शोभा सिंह को अपना गुरु मानते थे। 1954 में प्रथम बार इनके संपर्क में आए। और आजीवन इनके स्नेह पात्र बने रहे और एकलव्य की भान्ति, जन जातीय क्षेत्र लाहुल के दूर दराज़ स्थान में बैठ कर, अभ्यास करते रहे। और रूप चित्रण में प्रवीणता हासिल की।

लेकिन कुछ समय से वे रूप चित्रण की जगह पहाड़ों के चित्रण में अधिक ध्यान देते रहे। वे आजीवन चित्र रचना में व्यस्त रहे। इनका मानना था कि कला मानवीय सभ्यता का एक अति उत्तम रूप है। कला जहाँ समाज के बाहरी रूप का दर्पण है, वहीं कला अपनी एक खोज है। आनन्द की तलाश है। वह हिम मण्डित, कुँवारे पर्वत शिखरों पर प्रातः एवं सांयकालीन, सुनहरे वर्णों की आभा को निहार कर बेसुध से हो जाते थे। और तूलिका को लेकर इसे चित्रित करने बैठ जाते थे। और इस अनुभूति को, इस क्षण को वह चित्रकारिता की प्रेरणा मानते थे। वह एक दार्शनिक की भान्ति, गीतांजलि के इस पद्यांश को ''कि मैं निराकार रत्न की प्राप्ति की चाह लिए हुए रूप सागर में गोते लगाता हूँ।'' को अपना आदर्श वाक्य मानते थे।

इनका यह मानना था कि आनन्द ही निराकार रत्न है। और कला उस की प्राप्ति का एक साधन है। कला का कला पक्ष नितान्त आवश्यक है, परन्तु इस का दूसरा पक्ष अर्थात रचना पक्ष असाधारण है। अर्थात पिकासो के इस कथन से कि चित्र अच्छा बनता या बुरा यह गौण है पर रचना पक्ष में रचनाकार को जो आनन्द मिलता है, निश्चित ही वह महत्वपूर्ण है।

'चन्द्रताल' परिवार आप को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है!!!

सम्पादक

शायद वह आखिरी पहाड़ था

अजेय

साँझ के धुँधलके में गुरुजी आँगन में पेंटिंग कर रहे हैं। कभी पास जा कर ब्रश चलाते हैं तो कभी मुआईना करने ज़रा दूर चले जाते हैं..... साक्षी, चुपके से फोटो ले लो एक! कैमरा सेट करते करते कुछ खटका सा हुआ और गुरु जी ने मुड़ कर हमें देखा। मुझे पहचान कर प्रसन्न हुए। हम ने एक नेचुरल पोज़ मिस कर दिया। मैंने परिचय दिया -गुरु जी यह पोंकी है, मेरी छोटी बहन। और यह उस की बेटी, साक्षी।

अच्छा! पोंकी है?

नाम सुन कर गुरु जी को जैसे बहुत कुछ याद आ गया। पोंकी के चेहरे पर एकटक देखने लगे। वे वहाँ तीन चार साल की उस नन्ही गुड़िया की छवि तलाश रहे थे।

...... इतनी छोटी सी होती थी केलंग में। गुरु जी बस इतना बोल पाए। वह भी काफी मशक्कत के बाद। गत वर्ष से गुरु जी को बोलने में दिक्कत आ रही है। सुनते तो पहले भी ऊँचा ही थे। शुक्र है देख पाते हैं। एक आँख का केटेरेक्ट रिमूव हुआ है। दूसरी का अभी होना है। कलाकार की इन्द्रियाँ सलामत होना कितना लाज़िमी है। इन्द्रियों के अभाव में वह कितना बेबस हो जाता है! गुरु जी स्वस्थ हैं, चेहरे पर लाली है और आँखों में चमक। लेकिन बोल न पाने की पीड़ा उन के चेहरे पर साफ झलकती है। अभी इस वक्त कैलाश पर्वत रच रहे हैं। कल्पना और स्मृतियों की मदद से, मोटे और भारी स्ट्रोक्स में। अब डीटेल्ज़ वाला काम नहीं होता। बनते हुए कैलाश का नीला सफेद बरफानी सिर मुझे जबड़ा खोले हुए शार्क सा लग रहा है। जो बादलों के घुँघराले सागर से ऊपर उछला है। मानो किसी नन्ही सी शिकार का पीछा करते हुए उछला हो। लेकिन उस के आस पास कोई शिकार नहीं है। क्या यह उछाल शिकार के लिए है? इस उछाल में गहन तड़प है। इस में प्यास है। जीवन के लिए प्यास। जिजीविषा? अज्ञेय की एक कविता याद आती है -

बना दे चितेरे ....
पहले सागर आँक
सागर आँक कर फिर आँक एक उछली हुई मछली
ऊपर अधर में
हवा का एक बुलबुला भर पीने को
उछली हुई मछली
जिस की मरोड़ी हुई देह वल्ली में
उस की जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है ....

वैसे गुरु जी को जितना मैं जानता था, वे अस्तित्ववादी कभी नहीं लगे मुझे। आरम्भ में अपनी पेंटिंग्ज़ में वे अभिव्यंजना वादी शैली से प्रभावित नज़र आते थे। तब वे केवल पोट्रेट बनाते थे। बाद के दिनों में प्रकृति प्रेम ने उन्हें लैंड्स्केप की ओर आकर्षित किया होगा। वे कहा करते थे - प्रकृति तब तक ही सुंदर है जब तक कि वो अनछुई है। मनुष्य की पहुँच से बाहर। जहाँ आदमी पहुँच जाता है प्रकृति विकृत हो जाती है। वे प्रकृति को मानव से इतर सत्ता मानते थे। वे इन दोनों को आमने सामने देखते थे, लगभग कॉन्फ्लिक्ट में। इस हद तक कि मानव को वे आक्रांता और प्रदूषक की तरह देखते थे। मैंने उन की इस अवधारणा को हमेशा उन की पेंटिंग्ज में तलाशने का प्रयास किया। उन की हर नई पेंटिंग को मैं इसी नज़र से देखता हूँ। और इस आशय की 'पहाड़' शीर्षक से कुछ छोटी कविताएं भी लिखीं हैं जो उन्हीं को संबोधित हैं। मेरे लिए यह विस्मय का विषय है कि यह थॉट उन के चित्रों में कहीं नहीं आता। क्या यह थॉट चित्र में आ सकता है?

प्रख्यात चित्रकार वॉन गॉग की आत्मकथा है 'लस्ट फॉर लाईफ'! गुरुजी ने एक बार मुझे यह किताब पढ़ने की सलाह दी थी। उन दिनों मेरा मन भौतिक दुनिया में नहीं रमता था। अर्थोपार्जन में रुचि नहीं थी। शायद मेरे वीतरागी एटिट्यूड को देख कर गुरु जी ने यह सुझाव दिया होगा। मैंने यायावर मिस्टिक सैन्नी अशेष से वो किताब ले रखी है लेकिन अभी तक उसे पूरा पढ़ नहीं पाया। मैं उस लेखन में रम नहीं पाता। मेरे जाने वॉन गॉग जिस लस्ट की बात कर रहा है, वह जिजीविषा के भारतीय अभिप्राय से भिन्न है। वो एक नितांत भिन्न तल से कही गई बात है। निरी भौतिक और स्थूल बात। असल में ऐसी अमूर्त प्यास भव सागर में रहते शमित नहीं होती। इसी लिए हमारे यहाँ फिर से लौट आने की परिकल्पना है। क्यों कि एक जीवन में कितना अतिरिक्त जी लेगा आदमी? अपने जीने को मरने में शामिल कर देना चाहिए, इन दोनों को अलहदा-अलहदा मानने लगेंगे तो समस्या खड़ी हो जाएगी। जन्म और मृत्यु दो छोर मात्र हैं। असल जीवन तो बीच की सतत प्रक्रिया है। मैं इस कृति में वही देख पा रहा हूँ जो मैं देखना चाहता हूँ। यही कला का जादू है। गुरु जी के अपने अलग आशय होंगे, उन के पास इस कृति की अपनी अलग व्याख्या होगी। कैलाश पर्वत हिंदुओं का लोकप्रिय तीर्थ है। और तिब्बतियों का गुह्य शक्तिस्थल। और लाहुल के जन संस्कार में इन दोनों सभ्यताओं का समृद्ध समन्वय है। दूसरे, कैलाश की पूरी संरचना ऊर्वरता और प्रजनन का भी रूपक है। धार्मिक मान्यताओं के अलावा यह एक मिथकीय यौन मॉटिफ भी है। जानकार कहते हैं कि कैलाश में पुंसत्व के साथ साथ स्त्रैण लक्षणाएं भी गोचर रहती

हैं। और यह अर्द्धनारीश्वर का मेनिफेस्टेशन है। खैर, ये मेरी अपनी ही सेक्टेरियन चिंताएं व अवचेतन की कुंठाएं भी हो सकती हैं। गुरु जी का अभिप्राय पेंटिंग बन जाने के बाद स्पष्ट होगा। जरूरी भी नहीं कि स्पष्ट हो ही जाए। अभी वे फोरग्राऊँड में उलझे हैं जो ज़्यादा ही गूढ़ा बन रहा है। शायद वे इसे ऐसा नहीं बनाना चाहते। और परेशान हैं।

चित्र को बनते हुए देखना अद्‌भुत अनुभव है। मुझे लगा कि गुरु जी इस चित्र को ज़रूरत से ज़्यादा ही मेस्कुलिन रूपायित कर रहे हैं। अधूरा ही अंतिम सच है। कोई भी कला सम्पूर्ण नहीं होती। सब कुछ बनने की प्रक्रिया में है। और इसी से यथार्थ जगत भी ज़िन्दा है, सुन्दर है। शायद यही जीवन का भी सच हो। लेकिन कलाकार इस सच का अतिक्रमण करता है। वह सृजन की ज़िद में जीता है। अनुभूत को जस का तस कह देना कला साधना से सम्भव होता होगा। मैं नहीं जानता कितने कलाकार ऐसी तटस्थता बना सकते हैं! ऐसा एस्थेटिक डिस्टेंस .... !! लेकिन मेरा विश्वास है कि अनुभूत सत्य में अपना कुछ जोड़ पाना ही वास्तविक एडवेंचर है। एडवेंचर ऑफ क्रिएटिविटी। सर्जक होना एक बड़ा दुस्साहस है! गुरु जी से कोई चीज बन नहीं पा रही। क्या? वे कह भी नहीं पा रहे। क्या उन की जबान सलामत होती तब भी कुछ कह पाते? अकथ की पीड़ा अजब है।

अरे हम तो बाहर ही खड़े रह गए, चलिए भीतर चलते हैं ।

हमारी बातें सुन कर प्रोमिल बाहर आ गईं हैं। और उन का कुत्ता स्कूबी भी। दोनों ने बड़ी गर्म जोशी से हमारा स्वागत किया है।

बैठक में सन्नाटा है साक्षी और पोंकी पेंटिंग्ज़ में खो गई हैं। दलाई लामा, सोभा सिंह, लाहुल का शमन (गूर) ..... और अनेक सारे पहाड़। अधिकतर लाहुल के ही। कुछ लद्दाख की तरफ के। सब मेरे अपने ही पहाड़। लेकिन पहचानने में मशक्कत लगती है। क्यों कि गुरु जी ने चित्र फोटोग्राफिक नहीं बनाए हैं। उन्होंने इन पहाड़ों में काफी कुछ अपनी ओर से जोड़ा है। मेरे लिए प्रथम दृष्टया यही एक एस्थेटिक क्रीड़ा है कि इन पहाड़ों को आईडेंटिफाई कर पाऊँ। भीतर की परतों को जानना तो बाद की बात है। मैं चाहता हूँ कि गुरु जी अपने पहाड़ के इस 'अतिरिक्त' पर कुछ कहें, लेकिन वे बेबस हैं।

वे चाहते हैं कि मैं ही कुछ कहूँ, कहने को बहुत कुछ है मेरे पास लेकिन गुरु जी सुन पाएं तब न? तो, मैं भी बेबस हूँ। हम दोनों बेबस हैं और बेचैन हैं। यही सृजन की नियति है। जहाँ घोर अवशता है, वहाँ रचना घटित होती है। अनुभूत को न कह पाना ही पर्फेक्ट रचना है! काश ये पहाड़ बोलते होते! और जो सर्जक नहीं हैं, कितनी सहजता से सब कुछ कह जाता है!

गुरुजी मैं फिर आऊँगा। तब तक आप इस पेंटिंग को पूरा कर रखें। मैं ने ऊँची आवाज़ में कहा। गुरुजी कान के पास हाथ ले कर गए .... मैंने एक नोट पैड पर कुछ पंक्तियाँ लिख कर दीं। कैलाश के अपराजेय पुंसत्व को ले कर। और उस की विराटता को ले कर। गुरु जी मुस्कराए दि वायस रीगल लॉज का पुराना पियानो मेरे कान में धीमे से बज उठा.......लेकिन उस की रेज़ोनेंस व्यापक थी, सदियों पीछे से चली आ रही। सामने सिरमौर के चूड़धार से ले कर धौलाधार की श्रृंखलाओं तक फैली हुई! इक्का दुक्का तरंगें पीर पंजाल और ग्रेट हिमलयाज के पीछे पदुम, रुपशो, काशगर और खोतान तक भी चली जा रही ......

मैं इसे अनहद तो नहीं कह सकता, लेकिन कोई भीतरी यात्रा ज़रूर थी। यह कैसा भीतर था, कि पूरा हिमालय उस में समा जा रहा! और यह कैसी यात्रा थी, कि जितनी गहरी उतनी ही सहज।

गुरु जी आप लौट कर आ रहे हो न? आप जो पहाड़ बना रहे थे वह अभी अधूरा पड़ा है ... ■

(सुखदास जी के साथ मेरी अंतिम मुलाकात भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला में हुई जहाँ वे अपने सब से छोटे बेटे श्री सुनील वर्मा के साथ उन के सरकारी आवास में रह रहे थे। उन दिनों मेरी पोस्टिंग सोलन में थी। इस मुलाकात के तुरंत बाद वे चवाई (आनी) शिफ्ट हो गए थे जहाँ उन के अन्य बेटे श्री बलबीर वर्मा सेब की बागवानी करते हैं। फिर गुरु जी से मिलना न हुआ। अनेक बार प्लान बनाया कि एक बार जलोड़ी होते हुए शिमला जाया जाए और मार्ग में गुरु जी की संगत मिले, लेकिन यह हो न पाया और गुरुजी अपनी शाश्वत यात्रा पर प्रस्थान कर गए। यह आलेख उन के देहावसान पर दैनिक जागरण में छपे संस्मरण अंश का संपादित रूप है)

जीवन का सत्य

स्व० सुखदास

संसार रूपी सागर में जीवन के नाव को सुचारू ढँग से खेने के लिए आध्यात्मिकता और नैतिकता के दोनों चप्पुओं का होना ज़रूरी है। भौतिकता या आध्यात्मिकता के एक ही चप्पू से जीवन नाव को खेना खतरनाक है। जब-जब किसी राष्ट्र ने एक चप्पू से जीवन नाव को खेने की कोशिश की तो उसे इस की भारी कीमत चुकानी पड़ी। और चुकानी पड़ सकती है। अतः यह ज़रूरी है कि व्यक्ति एवं कोई राष्ट्र अपने जीवन नैया के खेने के लिए दोनों मार्गों का एक साथ अनुसरण करे। और ऐसा सम्भव हो सकता है। एक तरफ सुख-सुविधाओं का बाहुल्य हो, और दूसरी तरफ से आध्यात्मिकता का अनुसरण। तो ऐसी दशा में धरती पर स्वर्ग उतर सकता है, इस में शक नहीं है।

आज का संसार वैज्ञानिक एवं भौतिक सुख-सुविधाओं को तरजीह देने वालों का है। अधिक से अधिक पैसा कमाना ही जीवन का ध्येय बन चुका है। क्योंकि पैसे द्वारा ही भौतिक सुविधाओं को खरीदा जा सकता है। और ऐसा लगता है कि आज की दौड़ पैसे की दौड़ है। क्योंकि इसी से अहम् को बल मिलता है, ताकत मिलती है। सब कुछ मिलता है। पर तथ्य ऐसा नहीं है। अमेरिका जैसा भौतिक दृष्टि से सम्पन्न देश, अधिक अशान्त है। वह शान्ति की तलाश में भारत जैसे अविकसित देश में कुछ तलाश रहा है। जबकि भारत के सामने अमेरिका एक आदर्श देश है। अमेरिकन जैसे धनी आदमी बनने की चाह है। खैर, हमारी चाह ठीक है, हमें भी वैज्ञानिक दृष्टि से, भौतिक दृष्टिकोण से अमेरिका जैसा बनना है। मगर सत्य कुछ और है। वह है तराजू के दोनों पलड़ों के सन्तुलन का होना। हमें तराजू के सन्तुलन को न बिगाड़ कर चलना है। भौतिक तरक्की के साथ-साथ आध्यात्मिक तरक्की अनिवार्य है।

आज विश्व वैज्ञानिक एवं भौतिक तरक्की के शिखर पर है। लाखों मील की लम्बी यात्रा को अल्प समय में तय करना सरल हो गया है। आकाश में पक्षियों की भान्ति उड़ना और तेज़गति से उड़ना एक साधारण सी बात हो गई है। चाँद-तारों तक की यात्रा करना आज सम्भव हो गया है। दूर आँखों से ओझल दृश्य एवं घटना को तुरन्त देखना और हज़ारों मील की भाषा का सुन लेना, एक साधारण सी बात हो गई है। असाध्य रोगों का इलाज सम्भव हो गया है। और न जाने क्या-क्या आविष्कार होने वाला है, आने वाले समय में। ऐसी-ऐसी चीजों के आविष्कार की सम्भावना है जिस की कल्पना नहीं की जा सकती।

मगर ऐसा सब कुछ होने के बावजूद भी जीवन की परेशानियां बढ़ती जा रही हैं। अनिद्रा की बीमारी आम है। साधन सम्पन्न देश में इस का अधिक प्रकोप है। याद रहे, निद्रा प्रकृति का एक वरदान है। जो हर प्राणी को स्वाभाविक रूप से प्राप्त है। गोया यह एक स्वभाव है, अनिद्रा की बीमारी अपने आप से दूर होने की बात है। भौतिक तरक्की, जब यह मुख्य हो जाता है, और आध्यात्मिक पहलू गौण हो जाता है, तो अन्य हज़ारों प्रकार के रोगों के साथ इस का भी जन्म हो जाता है। अनिद्रा के साथ-साथ सैकड़ों प्रकार के भय का जन्म भी होता है। शत्रुभय, रोग भय, मृत्यु भय आदि आदि। अर्थात् भौतिक उन्नति से जहाँ सुख-सुविधा का अम्बार लग जाता है, वहाँ परेशानियों का भी कारण बनता है। वैज्ञानिक आविष्कारों में युद्ध सम्बंधी आविष्कार अधिकतर हैं। इस मंथन से विष का जन्म भी हुआ है। लेकिन इस हलाहल विष को शिव की तरह हलाहल ग्रहण करने वाला नज़र नहीं आ रहा है। इस वैज्ञानिक मन्थन के बीच में ऐसे-ऐसे विनाशकारी अस्त्रों का जन्म हुआ है जो सारी पृथ्वी का ध्वंस कर सकता है। ये सभी वैज्ञानिक आविष्कार भय के कारण हैं। मृत्यु के साधन हैं।

तो इन भयों से मुक्ति का एक मात्र मार्ग आध्यात्मिक विचारधारा है। आध्यात्मिक चिन्तन है। यह चिन्तन आदमी को, राष्ट्र को, भिन्नता के दायरे से बाहर कर एकता के सूत्र में बाँधता है। आदमी का व्यक्तित्व लहर के समान है, जो समुद्र के ऊपर हल-चल से उत्पन्न होता है। समुद्र एक है, अतः लहर का समुद्र से पृथक कहीं अस्तित्व नहीं है। वास्तव में सभी एक हैं। अभिन्न हैं। इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण गहन निद्रा है। इस अवस्था में प्राणी अहं के क्षुद्र बिन्दु से सवर्था मुक्त होता है, और आनन्द की अवस्था में होता है। जागने पर हम सभी यह कहते हैं कि मैं आनन्द के साथ सोया रहा। तो आनन्द बाहर नहीं भीतर है, अपना आप है। और मैंपने के भाव से मुक्त है। यह अवस्था स्वभावता है। शास्त्रों के अनुसार इस अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। इस अवस्था की प्राप्ति का क्षेत्र ही आध्यात्मिक क्षेत्र है। धर्म का क्षेत्र है। पर आज मनुष्य ने धर्म को भी एक क्षुद्र रूप दे दिया है। अनेकता में एकता का भाव सर्वोत्तम है। विश्व शान्ति के लिए आध्यात्मिकता का भाव ही एक मात्र इलाज है। हम अनेक नहीं बल्कि एक हैं। अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न मार्गों का अनुसरण कर मन्ज़िल तक पहुँचा जा सकता है। गन्तव्य एक है, मार्ग भिन्न-भिन्न हो सकता है।

महात्मा बुद्ध ने कहा है कि 'अपो दीपो आपो भव' अर्थात् अपना दिया आप स्वयं बनो। हर प्राणी में बुद्धत्व प्राप्त करने का सामर्थ्य है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए विभिन्न मार्गों को दर्शाया है। अपनी रुचि शुचि के अनुसार इन का चुनाव श्रेयस्कर है।

धर्म-अर्थ-काम, मोक्ष। यह महा मन्त्र है। अर्थ और काम विज्ञान के क्षेत्र हैं, तो धर्म और मोक्ष अध्यात्म क्षेत्र हैं। अतः जीवन की नैया को सुचारू ढँग से चलाने के लिए दोनों चप्पुओं - भौतिक एवं आध्यात्मिक - की आवश्यकता है। आइए दोनों चप्पुओं की मदद से जीवन की कश्ती को चलाएं! ■

सुनीता कटोच

कवि/चित्रकार कृष्णा

लाहुल की धरा ने इस दुनिया को बहुत कलाकार दिए हैं, जिन्होंने कला की अपनी-अपनी विधाओं से लाहुल का सर फक्र से ऊँचा किया है। इस तकनीकी युग में जहाँ कला अपनी पहचान खोती जा रही है वहां कृष्णा टशी पलमो ठाकुर की पेंटिंग्ज़ आप को अचम्भित कर देंगी। प्रस्तुत है कृष्णा से मेरी बातचीत का एक छोटा सा अंश :-

सुनीता- आप लाहुल के किस गाँव से हैं? क्या आप लाहुल में ही रहती हैं?

कृष्णा- जी मैं लाहुल के शिप्टिङ गाँव से हूँ और बचपन में ही अपने दादा-दादी के साथ सज़ला, मनाली आ गयी थी।

सुनीता- पेंटिंग्ज़ की तरफ आपका रुझान कैसे हुआ? क्या परिवार में कोई और पेंटिंग करता था?

कृष्णा- जब से होश सम्भाला या यूं कहें जब से अपने आस-पास की घटनाओं को महसूसना शुरू किया तब से उन भावों को उकेरना या रंगों में ढाल देना शुरू किया। रंग ही मेरे एकमात्र दोस्त हैं जो मेरे कहे को मेरी भाषा में सुनते हैं। हमारे घर में मुझसे पहले कोई पेंटिंग नहीं करता था।

सुनीता- अपनी बात कहने के लिए बहुत सी अन्य कलाएं भी हैं मसलन, कविता, कहानी या नाटक या और भी कुछ; पर आपने रंगों की दुनिया को ही क्यों चुना?

कृष्णा- कविताएँ व कहानियाँ शब्द ज्ञान का इंतज़ार करती हैं और रंग तो तभी से मेरे साथ बोलने लगे जब से देखना शुरू किया।

सुनीता- तो क्या आपने पेंटिंग की विधिवत शिक्षा ली?

कृष्णा- 2007 से 2011 तक पतलीकुहल के तिबेतियन स्कूल से ट्रेडिशनल आर्ट सीखा और उसके पश्चात पेंटिंग को प्रोफेशन के रूप में अपनाया।

सुनीता- पेंटिग को प्रोफेशन के रूप में चुनने से पहले आप अपने रंगों में किस तरह के दृश्यों को उकेरती थी?

कृष्णा- मैं जो भी भीतर महसूस करती थी उसे रंगों का आकार दे देती थी। परिपक्वता नहीं थी पर मेरे अनुभव और सम्वेदनाएँ मेरे रंगों की दुनिया के आधार थे। मुझे नहीं पता उस कला का नाम क्या था। अब भी ट्रेडिशनल आर्ट के साथ-साथ हर तरह की पेंटिंग करती हूँ और अपने मनोभावों को अपनी सम्वेदनाओं को केनवास पर उतारने की कोशिश करती हूँ।

सुनीता- ''ट्रेडिशनल आर्टिस्ट'', यह शब्द अपनी ओर खींच रहा है। ट्रेडिशनल आर्ट में आप किस तरह की पेंटिंग्ज़ बनाती हैं?

कृष्णा- बुद्ध की परम्परा, बुद्ध के दर्शनों का चित्रित संग्रह, बुद्ध, धम्म, संघ तीनों के रिकॉर्डेड संदेश।

सुनीता- बुद्ध का प्रभाव आपकी पेंटिंग्ज़ पर दिखता है। इसके अलावा आपको किस तरह की पेंटिंग करना पसंद है यानी आपको कौन से विषय पेंटिंग के लिए उद्वेलित करते हैं?

कृष्णा- मुझे मानवीय भावनाओं को रंगों में ढालना बहुत अच्छा लगता है। कल्पनाओं के आकाश में विचरते हुए देखा हुआ कोई भी दृश्य बनाना मुझे बेहद पसंद हैं।

सुनीता- कुछ थंका पेंटिंग के बारे में बताएं?

कृष्णा- थंका पेंटिंग बुद्ध के वास्तविक रूप, गुणों और उनके द्वारा दिए गए दर्शनों पर आधारित धर्म चित्र हैं। तथागत द्वारा दिए गए दर्शनों को स्मरण रखने हेतु यह धर्म चित्र बनाए जाते हैं, जो धर्म साधक को निर्वाण पथ पर निरंतर अभ्यासरत रहने को प्रेरित करते हैं। इसमें धर्म गुरु, मंडल, देव, देवी, बोधिसत्वों को चित्रित किया जाता है जो पूर्ण ज्ञान सम्पन्न मन, वचन और काय के भावों के माध्यम से धम्म दर्शनों को दर्शाते हैं। संक्षेप में थंका बुद्ध, धम्म और संघ तीन रत्नों का समावेश है।

सुनीता- आज कल आपकी लाहुल की पृष्ठभूमि पर बनी पेंटिंग्ज़ लोगों के दिलों में खास जगह बना रही हैं। खास कर जुराब बुनने वाली औरत का। आप इस बारे में क्या कहना चाहते हैं।

कृष्णा- लाहुल में दादा-दादी की कहानियां हमेशा मेरे ज़ेहन में अलौकिक संसार की कल्पना को चित्रित करती रही। मेरे बचपन का कुछ हिस्सा लाहुल में बीता है। वीरान सर्दियों के लम्बे एकांतवास ने रचनात्मकता को सींचा हैं। बर्फ की स्तह जैसी ठंडी कहानियां परत दर परत अब केनवास पर पिघलने लगीं हैं।

जुराब बुनती महिला वो माँ, बहन, बेटी या पत्नी है जो सर्दियों के वीराने को अपनी रचनात्मकता से गुनगुना रही है। बर्फ के चट्टानों जैसे समय को प्यार के लिए इस्तेमाल कर पिघला रही है।

प्रकृति की कठोरता से शिकायत की बजाए लाहुली महिला उसे प्यार से, इत्मीनान से सहर्ष स्वीकारती हैं और यही अभ्यास उनके स्वभाव को सहनशील और विनम्र बनाती है। जुराब बुनती महिला लाहुली महिलाओं की सहनशीलता के अभ्यास को दिखाती है।

सुनीता- आपने इस साल दो कला प्रदर्शनियों में भाग लिया। एक केलंग जनजातीय उत्सव के दौरान व हाल में जयपुर अंतर्राष्ट्रीय कला त्यौहार में। आपके अनुभव कैसे रहे और क्या नया सीखने को मिला।

कृष्णा- अपनी जन्मभूमि में मेरी पहली प्रदर्शनी बड़े कलाकारों श्रीमती गोगी सरोज पॉल जी और अन्य कलाकारों से कला की ऊंचाइयों को सुनना और उनके सानिध्य में कला को ज़िंदा महसूस करना अच्छा लगा। हर कलाकार खुद की खोज में संघर्ष करता है और उम्मीद रखता है कि कोई उसे खोज ले उसकी रचनाओं में। उन कलाकारों के साथ रहना जो कला और कलाकारों को सराहते हैं समझाते हैं, एक बेहद अच्छा अनुभव था।

अन्तर्राष्ट्रीय कला सम्मेलन जयपुर एक ऐसा अनुभव था जैसे बहुत सारे रंग और सिर्फ एक रचना और हर रंग को उतनी ही महत्ता और सम्मान। हर तरह के कला में माहिर कलाकार, अलग देश, अलग वेशभूषा, अलग परिवेश से आये हुए सभी कलाकारों को एक धागे में जोड़ती रचनात्मकता। सभी एक भाषा, एक तरह के एहसास और सभी सुनने समझने को आतुर। कला जोड़ता है सीधे एहसासों से फिर कोई बंधन नहीं रहता और यह आज़ादी का अनुभव अभी से बांटने का मन करता है और अभी सभी को ऐसे एहसासों में सम्मलित करने का मन करता है। उम्मीद है कला की भाषा को लोग दीवारों से टांग कर सजाने से आगे बढ़ कर विचारों में बोलने लगेंगे। मेरे लिए दोनों ही अनुभव यादगार हैं।

सुनीता- पेंटिंग का शौक रखने वाले युवाओं को आप क्या संदेश देना चाहेंगी?

कृष्णा- सभी युवा कलाकारों से बस इतना ही कहूँगी, पेंटिंग को शौक नहीं, पेंटिंग को ज़ुबां या बोली बना लेना क्योंकि शौक तो व्यक्ति में होते हैं कभी-कभी बदल भी जाते हैं ज़ुबान भूली नहीं जाती और विस्तृत होती रहती हैं। अपने भीतर की रचनात्मकता को पोषित करते रहें ताकि आपके भीतर की कोमलता कभी न मुरझाए।

सुनीता- अपने पेंटिंग कैरियर के बारे में बताएं।

कृष्णा- यात्रा कोई भी हो बिना प्रोत्साहन के कोई भी अकेले कदम भी नहीं बढ़ा सकता। मेरे सफर में माँ-बाबा का मुझ पर विश्वास और मेरे गुरु जी स्वर्गीय श्री दोर्जे थोनड्डुप जी का बड़ा सहयोग रहा। और हर कदम-कदम पर सम्वेदनशील शुभचिंतकों का आशीर्वाद और प्रोत्साहन मिला है।

पेंटिंग करियर की यात्रा मेरी ही तरह धीरे-धीरे मेरे साथ सफर करते करते यहाँ तक आ पहुँची है, जहाँ लाहुल के ही नहीं बल्कि लाहुल से बाहर के भी सम्वेदनशील बुद्धिजीवी मेरी यात्रा के सहयात्री बनते हैं और हमेशा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। पेंटिंग कैरियर की यात्रा बेहद चुनौती पूर्ण है और जारी है।

सुनीता- भविष्य के लिए आपकी क्या योजना है?

कृष्णा- सीखना चाहती हूँ- और भी बेहतर चित्रकारी की बारीकियां.. परछाइयों को सही आकार देने का तरीका। लाहुल-स्पीती की कहानियों को और भी सटीकता से चित्रित कर सकूं। दुआ करती हूँ कि हमेशा सीखती रहूँ।

सुनीता- आपको आपके आने वाले जीवन के लिए बहुत शुभकामनाएं व धन्यवाद!

मेरा जीवन कहां से कहां तक

डी.सी. ठाकुर

मुझे आज अपने जीवन के विभिन्न अवस्थाओं के बारे बताते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि मैं बाल्यकाल का कठिन जीवन व्यतीत कर कहां से कहां पहुंचा। मैंने एक अत्यन्त निर्धन परिवार के घर गांव रापड़िङ, ज़िला लाहुल स्पीति में 12 मार्च, 1939 को जन्म लिया। दुर्भाग्य कहिए कि इस परिवार के मेरे से बड़े तमाम आठों सदस्यों ने कभी किसी पाठशाला के प्रांगण में कदम तक नहीं रखा तथा साक्षरता से कोसों दूर रहना ही उनके भाग्य में लिखा था। जब मैं 7 वर्ष का हुआ तब एक महान् व्यक्ति ने मुझे गांव में मिट्टी से खेलते देखा। उसने मेरे माता-पिता को मुझे पाठशाला भेजने के लिए मनाया और इस प्रकार मुझे गांव के साथ स्कूल जाहलमां में जाने व पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मुझे बाद में मालूम हुआ कि जिस महानुभाव ने मेरे माता-पिता को मुझे पाठशाला भेजने के लिए प्रेरित किया वही मेरे जीवन सुधारने वाले परम आदरणीय गुरु जी श्री मोती राम जी रंगबे गांव के थे। जीवन में मैंने जो भी किया या पाया यह उन्हीं की बदौलत से सम्भव हुआ। उनके ऋण को इस जीवन में तो क्या अगले जन्म में भी चुका नहीं सकता। केवल धन्यवाद कह कर उनकी अमर आत्मा के चरणों में फूल ही भेंट कर सकता हूं।

हां, मैंने प्राथमिक पाठशाला जाहलमां में 1946 में प्रवृष्टि ली, परन्तु निर्धनता के कारण पढ़ाई के लिए आवश्यक वस्तुओं को जुटाना आसान नहीं था। लेखन हेतु बांस की कलम नहीं खरीद सकता था। इसके लिए मुझे कलम साईज़ की टहनी एक झाड़ी से काट कर (स्थानीय भाषा में झाड़ी का नाम खरमों) कलम बनानी पड़ती थी। तवा की कालिख व दुकान से थोड़ा गुड़ ला कर काली स्याही बनाई जाती थी। लिखने के लिये कापी नहीं बल्कि तख्ती प्रयोग में लाई जाती थी। गाजिन खरीद न पाने की वजह से कई-कई बार तख्ती पर ''माकोल'' यानि सफेद मिट्टी का लेप चढ़ाना पड़ता था। इस तरह की पढ़ाई का सिलसिला 2-3 वर्ष तक चलता रहा।

पाठशाला से घर आने के बाद कभी भी पढ़ाई का अनुकूल माहौल नहीं बना। घर पहुंच कर एक दो घंटे खेलने-कूदने में बीतता था और शेष समय दादी के कहने पर घरेलू कामों में हाथ बंटाता था। यह मेरा दुर्भाग्य था कि जब मैं 8 वर्ष का था कि अचानक मेरी माता जी का देहान्त हो गया और इसके पश्चात् मेरा लालन-पालन मेरी दादी व बहनों ने किया। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया कि स्कूल से आने के बाद घर में पढ़ाई का माहौल नहीं बना पाया। रात को रोशनी के अभाव में पढ़ाई करना संभव नहीं होता था। रोशनी के लिये मिट्टी के तेल से लेम्प जलाते थे और उसकी मद्धम रोशनी में रात को पढ़ना अत्यन्त कष्टदायक था। लेम्प भी अधिक से अधिक एक घंटा तक ही जलाते थे, क्योंकि उन दिनों एक कृषक को वर्ष में 2 या 3 बोतल से अधिक मिट्टी का तेल नहीं मिलता था। कमी पूरी करने के लिए गांव वाले लगभग 5 कि.मी. दूर नालडा गांव के जंगल में जाकर कटे कायल के ठूंठ व जड़ उखाड़ कर लाते थे, जिसे बाद में चीर कर छोटे-छोटे टुकड़े करके टार्च बुड निकाल कर कंजूसी के साथ रोशनी के लिए जलाते थे।

किसी न किसी तरह अत्यन्त तंगी की हालत में मैंने 1954 में जाहलमां माध्यमिक पाठशाला से आठवीं की परीक्षा पास की। आर्थिक स्थिति के कारण आगे की पढ़ाई में विघ्न पड़ना शुरू हुआ, क्योंकि मैट्रिक तक पढ़ने के लिये कुल्लू जाना पड़ता था, जिसके लिये मुझे प्रतिवर्ष कम से कम रुपये 350/- की आवश्यकता थी। पिता जी ने अपनी समझ अनुसार सबसे बढ़िया व्यवसाय दर्जी का काम सिखाने की इच्छा प्रकट की, पर उस समय उनके पास जेब में इतना पैसा नहीं था। जब कि एक सिलाई मशीन की कीमत उन दिनों लगभग रु० 200/- की पड़ती थी। मुझे समझाया गया कि सितम्बर तक प्रतीक्षा करना, क्योंकि कुठ निकाल कर ही सितम्बर माह में मनाली भेज कर बेचने के बाद सिलाई मशीन खरीद पाएंगे। इस बीच मुझे सड़क के काम पर लगाया गया और मैंने 2 महीने तान्दी पुल से लेकर मूलिंग पुल तक सड़क बनाने के काम पर रु० 2.00 प्रतिदिन के हिसाब से बतौर मज़दूर काम किया। बाद में मैंने अपने जीवन की पहली कमाई 2 माह की मज़दूरी रु० 120/- अपने पिता जी को भेंट किए।

जुलाई 1954 में किसी तरह मुझे पता चला कि मेरे सहपाठी जिन्होंने जाहलमां स्कूल से आठवीं की परीक्षा पास की वह सब कुल्लू चले गए हैं और 10 रु० मासिक टियूशन फीस देकर आठवीं स्तर की अंग्रेज़ी विषय की तैयारी कर रहे हैं। यह जानकर मैंने भी कुल्लू जाने की ठानी और मेरे ज़िद और परिवार के अन्य सदस्यों के अनुरोध पर पिता जी मुझे आगे की पढ़ाई के लिए रु० 30/- प्रतिमाह देने को तैयार हुए। यह उल्लेखनीय होगा कि उन दिनों यह राशि राशन, कपड़े किताबें, टियूशन फीस आदि के लिये काफी थी। इस प्रकार मैं भी घर से 130 कि.मी. पैदल चल कर 2 दिनों में मनाली पहुंचा। उन दिनों घाटी में न तो गाड़ियां चलती थीं और न ही खाने-पीने के लिए व रात्रि विश्राम के लिए कोई होटल होता था। घर से इतना खाना साथ लेकर चलते थे, ताकि मनाली पहुंचने तक किसी पर निर्भर रहना न पड़े। इस प्रकार घर से मनाली और मनाली से घर तक पैदल चलने का यह सिलसिला लगभग 10 वर्ष

तक चलता रहा।

मनाली पहुंच कर पहली बार बस में बैठने का मौका मिला और रू० 2.00 किराया देकर कटराईं पहुंचा और अन्य साथियों के साथ मिलकर एक कमरा 12 फुट x 12 फुट का किराये पर लिया। बेशक हमारी पढ़ाई कटराईं बिहाल के खुले मैदान में होती थी, परन्तु हमारे गुरु जी, जी जान से खूब मन लगा कर हमें पढ़ाते थे। मैं और मेरे सहपाठी उस कर्मठ व महान् व्यक्ति श्री भक्त राम ठाकुर के सदा ऋणी व आभारी रहेंगे, जिनके अथक परिश्रम व मार्गदर्शन के फलस्वरूप मुझे व मेरे साथियों को वर्ष 1955 में राजकीय हाई स्कूल कुल्लू में 9वीं श्रेणी में दाखिला मिला। वर्ष 1956 में एक अफवाह फैल गई, जिसके अनुसार लाहुल स्पीति ज़िले के उस छात्र को पंजाब सरकार स्नातकोत्तर तक मुफ्त शिक्षा प्रदान करेगी जो मैट्रिक की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होगा। इस होड़ में लाहुल स्पीति के 10वीं क्लास में पढ़ने वाले विद्यार्थी रात दिन एक कर पढ़ाई में जुटे। मैं भी अन्य साथियों की तरह प्रतिदिन 16 घंटे पढ़ाई करता था।

वर्ष 1957 में मैट्रिक की परीक्षा में कुल 120 विद्यार्थियों में से लगभग 30 विद्यार्थी लाहुल के थे। परीक्षाफल के अनुसार अधिकतर छात्रों ने प्रथम श्रेणी में परीक्षा पास की और शेष ने द्वितीय श्रेणी में। परीक्षा परिणाम में पंजाब के सारे स्कूलों में हाई स्कूल कुल्लू का स्थान प्रथम रहा। परिणाम स्वरूप स्कूल के मुख्य अध्यापक ने खुश होकर दो दिन के लिये स्कूल में अवकाश घोषित किया। परम पिता परमेश्वर ने भी मुझे रात दिन घोर परिश्रम करने का फल दिया ओर प्रथम श्रेणी में पास कर मैंने अपनी क्लास में दूसरा स्थान प्राप्त किया।

मैट्रिक पास करने के पश्चात् मैंने 1957 में स्नातकोतर महाविद्यालय धर्मशाला ज़िला कांगड़ा में प्रविष्टि ली, परन्तु ग्रीष्म अवकाश के पश्चात् अस्वस्थता के कारण पढ़ाई जारी नहीं रख सका। अगले वर्ष यानि 1958 में मैंने कृषि महाविद्यालय लुधियाना में दाखिला लिया। सौभाग्यवश कालेज की पढ़ाई के दौरान आर्थिक समस्या का सामना करना नहीं पड़ा, क्योंकि अच्छे अंक प्राप्त करने के फलस्वरूप मुझे प्रतिमाह रु० 80.00 छात्रवृत्ति मिलती रही और इस राशि से मेरी तमाम आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती थी और घर से पैसे मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वर्ष 1962 में स्नातक की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् आगे की पढ़ाई जारी रखी और वर्ष 1964 में पंजाब कृषि विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में M.Sc. (Agriculture) की डिग्री प्राप्त की। परा स्नातक (Post Graduation) की पढ़ाई के दौरान भी मुझे पैसों की कमी नहीं रही, क्योंकि मुझे रु० 120/- प्रतिमाह छात्रवृत्ति मिलती रही। समय-समय की बात है कि उन दिनों सरकारी नौकरी मिलना बिल्कुल आसान थी। थीसिस प्रस्तुत करने के पश्चात् मैं परिवार से मिलने घर जाना चाहता था, परन्तु विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने सहायक अन्वेषक का पद ग्रहण करने तथा शीघ्र पालमपुर कैम्पस में जाने की ज़िद की। फलतः जून 1964 से मार्च 1966 तक उपरोक्त पद पर अपनी सेवाएं दी। इस दौरान हिमाचल प्रदेश सरकार ने वन अधिकारी के 5 पद भरने के लिये यू.पी.एस.सी. द्वारा विज्ञापन दिया और अपने अथक परिश्रम के बल पर मैं भी चयनित हो गया। तत्पश्चात् सहायक अन्वेषक के पद से त्यागपत्र देकर भारतीय वन अनुसन्धान व वन महाविद्यालय देहरादून में वानिकी से सम्बन्धित प्रशिक्षण ग्रहण किया। 2 वर्ष की ट्रेनिंग पूरी होने के बाद अप्रैल 1968 को डलहौज़ी वन मण्डल में सहायक वन अरण्यपाल का पद ग्रहण किया। इन्हीं दिनों मैंने भारतीय वन सेवा की परीक्षा में भाग लिया और ईश्वर की कृपा से 1969 में मैंने आई.एफ.एस. की परीक्षा भी पास की।

हिमाचल वन विभाग में बतौर वन मण्डल अधिकारी मेरा पौधरोपण क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा। प्रदेश के तमाम वन मण्डलों के मुकाबले में सबसे अधिक सफल पौधरोपण हेतु वर्ष 1982-83, 1983-84 तथा 1984-85 में लगातार 3 बार मुझे माननीय मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश द्वारा पुरस्कृत किया गया। वर्ष 1986 में मेरी पदोन्नति अरण्यपाल होने पर मुझे रामपुर वन वृत्त में तैनात किया गया। वर्ष 1988 में मुझे वन प्रशासन तथा प्रबन्धन सम्बन्धी विषय में वाशिंगटन डी.सी. अमेरिका में अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्ष 1995 में मुझे मुख्य वन अरण्यपाल के पद पर पदोन्नत किया गया और वन विभाग में 29 वर्ष तक सेवारत रहने के पश्चात् मार्च 1997 में सेवानिवृत्त हुआ। मई 1997 में मुझे बागवानी व वानिकी विश्वविद्यालय नौणी सोलन के कुलपति ने मुझे अधिष्ठाता वन महाविद्यालय का पद स्वीकार करने के लिये अनुरोध किया, जिसे मैंने स्वीकार कर लिया और 2 वर्ष तक इस पद पर अपनी सेवाएं दी। इसके पश्चात् भी वर्ष 1999, 2000 व 2001 तक उक्त विश्वविद्यालय के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्ज़ का सदस्य बना रहा।

सेवानिवृत्ति के उपरान्त मैं समाज सेवा से जुड़ा हूं और राष्ट्रीय दृष्टिहीन संगठन सरवरी कुल्लू के स्थाई सदस्य के रूप में कार्यरत हूं।

मेरी अन्तिम इच्छा है कि मरणोपरान्त मेरे अति आवश्यक अंग किसी ज़रूरतमंद के काम आवें। साथ में यह भी इच्छा है कि अवशेष को हरिद्वार ले जाने तथा व्यर्थ के अन्य रस्मों को त्याग कर कम से कम रु० 30,000/- गरीब व असहायों की सहायता के लिये दान दिया जाए। ■

भा.व.से. (रिटायर्ड)
शास्त्री नगर, कुल्लू, हि.प्र.।

बेचारे

डॉ. बी.एस.रावल

आश्चर्यजनक, किंतु सत्य। यह एक सच्ची घटना है। ऐसी घटनाएं मुद्दतों तक भुलाई नहीं जा सकतीं। इस दुनिया में किसी अच्छे काम का प्रतिफल हमेशा ही ऊँचे और रसूख वाले लोग छीन लेते हैं, जबकि उन का योगदान शून्य के बराबर होता है। उन में इतनी भी दयानतदारी नहीं होती कि एक ईमानदार वर्कर की तारीफ करें या उस की पीठ ही थपथपा दें।

मई 1973 में भारत के राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि मनाली में छुट्टियाँ मनाने आए थे। मनाली के छोटे से कस्बे में बड़ी हलचल थी। टूरिस्ट सीज़न अपने चरम पर था। महामहिम के मनाली प्रवास को सफल बनाने के लिए हिमाचल प्रदेश केबिनेट और प्रशासन जी जान से जुटी थी। प्रदेश के विभिन्न भागों से वर्दियों और सादे कपड़ों में वाकी-टाकी वाले सुरक्षा कर्मी तैनात किए गए थे। नाहन तक से एम्बुलेंस और दमकल बुलाए गए थे।

श्री गिरि हर सुबह वशिष्ठ के गर्म चश्मे में स्नान करने जाते। दोपहर बाद वे निकटवर्ती पर्यटन स्थलों को घूमने निकल जाते, जैसे कि - हिडिम्बा मन्दिर, लॉग हट्स, नगर कासल, रोरिख आर्ट गैलरी, नेहरू कुण्ड और राहला फाल इत्यादि। कभी स्कूली बच्चों द्वारा साँस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता और कभी कुल्लू और मनाली के नागरिकों द्वारा सिविक रिसेप्शन दिए जा रहे थे।

इसी बीच प्राचीन कुल्लू राज्य की राजधानी नग्गर में शाड़ी जातर नामक उत्सव मनाया जा रहा था। 23 मई को मैं डॉ. जे. एस. ठाकुर और उन के रिश्तेदारों के साथ उत्सव देखने नग्गर जा रहा था। उन दिनों मनाली से नग्गर सड़क पक्की नहीं थी और हमारे ड्राईवर महोदय हमारे विनति करने पर भी हाईवे वाला लम्बा रूट अपनाने को तैयार नहीं थे जो पतलीकुहल हो कर जाता था। उसे हमारे कपड़ों की उतनी फिकर नहीं थी जितनी कि अपने लॉग बुक की। नग्गर पहुँचते ही हम लोक निर्माण विभाग के रेस्ट हाऊस में घुस गए कि कपड़ों पर से धूल झाड़ लें और हाथ मुँह धो लें। लाऊड्स्पीकर पर लोक धुनों की ऊँची ध्वनियाँ सुनाई दे रही थीं, जैसे ही हम रेस्ट हाऊस से बाहर निकले, एक स्थानीय आदमी दौड़ता हुआ मेरे पास आया (वह मुझे इस लिए पहचान गया कि साल भर पहले मैंने यहाँ कुछ महीने लीव वेकेंसी पर काम किया था) बताने लगा कि मेले में बहुत सारे लोगों को उल्टियाँ और टट्टियाँ लगीं हैं। उन्हें डिस्पेंसरी पहुँचाया जा रहा है। हमें यह समझते देर नहीं लगी कि फूड प्वाईज़निंग हो गई है। मैं और डॉ. ठाकुर तुरंत मरीज़ों को देखने चल पड़े। कुल्लू से मेला देखने आए हमारे कुछ नर्स तथा पशु पालन महकमे के कुछ लोग तथा हमारे स्थानीय स्टाफ के लोग हमारी मदद कर रहे थे। मरीज़ों में अधिकतर औरतें और बच्चे थे जो प्रायः चटपटी चीज़ों के शौकीन हुआ करते हैं।

हम ने तुरंत एक नमक की थैली खरीदी और नमक का गाढ़ा घोल तैयार किया। बगैर किसी जात-पात का भेदभाव किए, (जिस के प्रति यहाँ के लोग बेहद संवेदनशील होते हैं) एक ही गिलास से यह घोल सभी मरीज़ों को पिलाया गया। उस गिलास ने एक पवित्र ब्राह्मण से ले कर अछूत तक के होंठ छू लिए होंगे। तमाम ज़रूरी और जीवन रक्षक दवाइयाँ उन्हें तुरत-फुरत दी गईं। यहाँ तक कि स्टेरिलिज़ेशन के लिए भी वक़्त नहीं था। सब से खराब बात यह थी कि भीड़ बेकाबू होती जा रही थी। उन में से आधे लोग तो शराब के नशे में मस्त थे और उन्हें अपने भाई बन्धुओं की कोई चिंता नहीं थीं और जो नशे में नहीं भी थे, वे भी बस तमाशा देख रहे थे। मरीज़ों की संख्या 80 के करीब पहुँच गई। स्वास्थ्य और पशुपालन विभाग के वालंटियरों की मदद से किसी तरह हालात पर काबू पा लिया गया। मैंने डॉ. ठाकुर से कहा कि मंच पर मुख्य अतिथि के माध्यम से यह घोषणा कर दी जाए कि लोग मेले में कुछ भी न खाएं। लेकिन उन को जैसे ही इस बात का पता चला तो उन्होंने डॉ. ठाकुर को दवाइयों के लिए कुल्लू भेज दिया। जब कि मौके पर मेरी मदद के लिए उन की सख्त ज़रूरत थी। शाम साढ़े छह के आस-पास हालात कुछ सामान्य हुए। इस बीच मैंने वक़्त निकाल कर कुल्लू और मनाली में अपने वरिष्ठ अधिकारियों को इस घटना की जानकारी दी और मदद के लिए गुहार लगाई। उस के बाद मैं खुद मुख्य अतिथि जी के पास गया और दुकानें बन्द करवाने तथा अन्य ज़रूरी घोषणाएं करवाने की प्रार्थना की। उन्होंने गाँव के प्रधान को मेरे साथ जाने के आदेश दिए, कि उन के साथ रहने से हमें दुकानें बन्द करवाने में दिक्कत न आए। प्रधान अनमने भाव से मेरे साथ चल पड़ा। कॉलेज के छात्रों ने इस काम में हमारी बड़ी मदद की। कुछ दुकानदारों ने हमारी बात मानने से इन्कार कर दिया। लेकिन उन्हें जब धमकाया गया कि उन के खाद्य पदार्थों का सेंपल लिया जाएगा, तो वे मान गए। जब हम डिस्पेंसरी के प्रांगण में पहुँचे तो यह देख कर मैं बहुत निराश हुआ कि प्रधान जी दुबारा मुख्य अतिथि के बगल वाली सीट पे विराज मान थे। लोगों के लिए ज़िन्दगी और मौत का सवाल था लेकिन किसी ने डिस्पेंसरी में आ कर मरीज़ों से मिलने या सांत्वना प्रकट करने की ज़रूरत नहीं समझी। जब कि हम लोग चीखते-चिल्लाते, उल्टियाँ और टट्टियाँ करते मरीज़ों से भरे कमरों में काम करते रहे।

शाम घिरते-घिरते डॉ. ठाकुर, कुल्लू से मेडिकल ऑफिसर हेल्थ के साथ पहुँचे, साथ ही मनाली से डिप्युटी सी.एम.ओ. भी पहुँच गए। फिर हम सब ने मिलकर मरीज़ों की एक बार फिर से जाँच

की। 13 मरीज़ ऐसे थे जिन को कुल्लू अस्पताल पहुँचाना ज़रूरी था। बाकियों को दवाइयाँ दे कर छुट्टी दे दी गई।

इस बीच मेला खत्म हो गया। मुख्य अतिथि जी ने सीधे मुख्य सचिव को फोन लगाया जो उस समय मनाली में थे। उन्होंने आदेश दिया कि मरीज़ों के लिए तुरंत गाड़ियों का प्रबन्ध किया जाए। अचानक कारों और जीपों के काफिले वहाँ पहुँच गए। प्रशासन हरकत में आ गई थी। हर अधिकारी अपना नम्बर बनाने के चक्कर में था। गम्भीर मरीज़ों को वहाँ से शिफ्ट करने से पहले खूब हो हल्ला मचा। सी.एम.ओ. कुल्लू के आदेश पर सभी डॉक्टरों और नर्सों को बुलाया गया। और कुल्लू अस्पताल में पूरा एक वार्ड इन मरीज़ों के लिए खाली कर लिया गया। मरीज़ों की तुरंत जाँच की गई। उन्हें इंट्रावेनस ड्रिप चढ़ाया गया। ईश्वर की कृपा और हमारी मेहनत से किसी की जान नहीं गई।

फिर तो हर अधिकारी अपनी कार्य कुशलता दिखाने के लिए कोई न कोई मरीज़ ले कर पहुँचने लगा। जबकि इन मरीज़ों को नग्गर में ही देख लिया गया था, और किसी सघन चिकित्सा की ज़रूरत नहीं थी। अंततः वहाँ इतनी भीड़ हो गई कि उपायुक्त कार्यालय से दरियाँ और पुलिस लाईन से कम्बल तक मँगवाने पड़े।

आधी रात के बाद हम मनाली लौट गए। मनाली पहुँच कर मेरे वरिष्ठ सहकर्मी ने अगली सुबह राष्ट्रपति महोदय के साथ मेरी ड्यूटी लगा दी, क्योंकि वे स्वयं थक गए थे।

अगली सुबह जब मैं ड्यूटी खत्म कर वशिष्ठ बाथ से लौट रहा था तो मनाली बाज़ार में रुका। एक जगह मुख्य अतिथि महोदय को कुछ राज्य स्तरीय अधिकारियों से घिरे हुए देखा। मैंने उन्हें यह कहते हुए सुनाः ''अरे मैं था वहाँ.....वर्ना वहाँ तो हंगामा.... पब्लिक घबराई हुई... डॉक्टर घबराए हुए... मैं आया, टेलीफोन पर बैठा... इधर फोन...उधर फोन....सब ठीक-ठाक हो गया... हाँ...हाँ...हाँ...हाँ।''

लोक संपर्क विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी ने मुझे वहाँ से गुज़रते देखा तो बात में दखल देते हुए कहा, सर, इस डॉक्टर ने वहाँ बड़ा अच्छा काम किया..

मुख्य अतिथि जी सकपका गए। अपने कन्धों के ऊपर से मेरी ओर देखते हुए बड़े अनौपचारिक अन्दाज़ में बोले, ''हाँ, हाँ, ये भी थे बेचारे...''

पुनश्च :

25 मई, 1973 को दी ट्रिब्यून चण्डीगढ़ ने नग्गर में फूड प्वाईज़निंग की इस घटना की एक संक्षिप्त सी खबर दी। जिस में यह कह कर मुख्य अतिथि महोदय की तारीफ की गई कि उन की व्यक्तिगत देख-रेख में मरीज़ों को ज़िला अस्पताल पहुँचाया गया और इस तरह कोई केजुअलिटी नहीं हुई.......वाह री दुनिया!

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

mtb events
mtb ADVERTISERS
mtb FILMS
mtb MUSIC
mtb TRAVEL

चिट्ठी की यात्रा में मौसम बदल जाते थे

गणेश गनी

1986 से 2016 तक के बीते बरसों में भी बहुत अधिक कुछ नहीं बदला। हिमाचल के आदिवासी क्षेत्र पांगी के कुछ गाँव तो सड़क, पानी, बिजली, टेलीफोन से अब तक कटे हैं। पिछले चुनावों में कुलाल गाँव के लोगों ने खुलकर बहिष्कार किया। भ्रष्टाचार ने पांगी तहसील को बर्बाद कर दिया है।

बात 1986 की है। मेरे गांव शौर में प्राथमिक पाठशाला थी। पांचवीं पास करने के बाद मुझे चार मील दूर दूसरे गाँव पुरथी में मिडल स्कूल जाना पड़ा। यह चार मील का रास्ता देवदार के घने जंगल में से हो कर गुज़रता था। कहीं-कहीं तो सूरज की किरणें भी अंदर नहीं घुस पाती थी। हम बच्चों को 8 मील रोज़ पैदल चलना पड़ता था। आठवीं कक्षा में पहुँचते ही 1986 में पिता जी ने मुझे चम्बा शहर में पढ़ने के लिए पहुँचा दिया। यह सफर तीन दिन का था। दो दिन पैदल और एक दिन बस यात्रा। घाटी से बाहर जाने के चार रास्ते हैं और चारों में एक-एक दर्रा है जिसे जोत कहा जाता है। दो दर्रे पैदल ही लांघने पड़ते हैं।

हमारे गांव में बिजली, टेलीफोन, टीवी कुछ नहीं था। केवल रेडियो ही एक मात्र मनोरंजन का साधन था। हम शहर से पत्राचार करते। ये पत्र दस्ती तथा डाक द्वारा भेजे जाते थे। चिट्ठी का इन्तज़ार दोनों ओर बेसब्री से होता था। डाकिया जिसे हरकारा कहा जाता था, चार मील दूर गांव से पैदल चल कर पत्र लाता था। दस्ती पत्र 5-7 दिनों में मिल भी जाता था मगर डाक द्वारा भेजा पत्र महीने दो महीने बाद ही पहुँचता था। इस दौरान तो मौसम भी बदल जाया करता था। परंतु चिट्ठी ताज़गी का एहसास वैसे ही देती जैसे कल ही लिखी गई हो। कई बार पिता जी घर पर नहीं होते तो माँ किसी स्कूली बच्चे से चिट्ठी पढ़वा कर सुन लेती। चिट्ठी कई-कई बार पढ़ी जाती थी और हर बार नई अनुभूति देती। चिट्ठी विस्तार से लिखी जाती। मसलन पढ़ाई लिखाई, इम्तहान, मौसम, सुख-दुःख आदि। वैसे ही गांव से पत्र आने का अर्थ होता कि घर और गांव का पूरा हाल-चाल। जैसे माल-मवेशी, खेत-खलिहान, अड़ोसी-पड़ोसी, रिश्ते-नाते, जीना-मरना आदि। इसके अलावा सबकी ओर से दुआएं, सुखसांत, प्यार आदि भी चिट्ठी में भरा रहता था। मेरे गांव में डाकघर तब भी नहीं था और आज भी नहीं है। अब सड़क, बिजली पानी, मोबाइल तो हैं और साथ में तनाव भी है। वो दिन अभावों भरे थे, फिर भी तनावमुक्त थे।

1992 में मैं 3 दिन की यात्रा के बाद गाँव पहुँचा तो रास्ते में ग्रामीणों ने बताया कि उन्हें अफ़सोस है। मैंने पूछा कि किस बात पर। उन्होंने बताया कि दादी का देहान्त एक महीना पहले हो गया है। मैं हक्का-बक्का और उदास हो गया। यह सब इतनी जल्दी हुआ कि आँसुओं को आँखों से बाहर निकलने का भी समय नहीं मिला। साल में एक बार ही गाँव आ पाता था। घर पे पिता जी ने बताया कि क्या करते। यदि चिट्ठी भेजते तो महीनों लगते। संदेशवाहक भेजते तो 6 दिन आने जाने में ही लग जाते। तुम ने घर गर्मियों की छुट्टियों में तो आना ही था इसलिए सोचा कि तब तक ऐसे ही चलने दो।

1986 के बसंत के दिन थे। मेरे भीतर और बाहर जो खुशी थी वो न बसंत से कम थी, न शीत से ज़्यादा। बस भीतर बाहर फूल ही फूल खिले थे और सतरंगी तितलियाँ उड़ रही थीं। इसका कारण एक ही था कि मेरे माता-पिता ने मुझे भी बड़े भाई के पास शहर भेजने का फैसला कर लिया था। अब हर रोज़ पाठशाला पहुँचने के लिए देवदार के एकदम घने जंगल के बीच से चार मील उबड़ खाबड़ पगडण्डी पर चलकर जाने के दिन हवा होने वाले थे। आखिर वो दिन आ ही गया। मैं पिता जी तथा भैया के साथ विहान में ही निकल पड़ा घर से, अपने पीछे माँ को रोता, छोटे भाई बहन को सोता और पक्षियों को अखरोट के पेड़ पर चहकता छोड़, एक ऐसी यात्रा पर जिसका रास्ता फिर कभी घर की ओर नहीं मुड़ा। पहली बार गांव छोड़ा तो जैसे छूटता ही चला गया।

माँ ने बताया उस दिन सूरज नहीं निकला। आकाश बादलों से ढका रहा। विविध भारती पर भोर सुहानी कार्यक्रम प्रसारित नहीं हुआ। घाटी में कोई गीत नहीं गूँजा। भोर धीरे-धीरे साँझ में बदल गई। और फिर एकदम जैसे रात घिर आई। हम पांगी घाटी के अपने गाँव शौर से लगातार चलने पर तीसरी रात को रोहतांग पार कर कुल्लू से होते हुए चम्बा पहुँचे। अपने ही ज़िला मुख्यालय तक पहुँचने में तीन दिन लग गए। इस दौरान मैंने पहली बार गाड़ियां देखीं और पहली ही बार बस में सफर किया। पहली ही बार सन्तरे, केले, आम जैसे फलों को किताबों के पन्नों से बाहर बाज़ार में देखा। पहले पहल बाज़ार देखा। जो गीत रेड़ियो पर सुने थे, उन्हें पहली बार टेलीविजन और सिनेमा हाल में परदे पर देखा। सब कुछ जादुई यथार्थ सा।

गाँव में गर्मियों के दिनों में लोग खेतीबाड़ी करते और सर्दियों में जब हिमपात होता तो छह माह तक जैसे नज़रबंदी का दौर चलता। इन दिनों में मेले त्यौहार जम कर मनाए जाते। यही मनोरंजन के साधन भी थे और एक दूजे के घरों में आने-जाने के बहाने भी। सब मिल बाँट कर जीवन जीते। आज औपचारिकताएं मात्र रह गई हैं। कल का पता नहीं। ■

लाहुल : यात्रियों के विवरणों से

तोबदन

लाहुल दुर्गम घाटी है। यह चारों ओर से बर्फ से ढके ऊंचे पर्वतों से घिरा हुआ है। सर्दियों में जब यहां कई-कई फुट बर्फ पड़ती है। पहले यह क्षेत्र बाहर की दुनिया से पूरी तरह से कटा रहता था। गर्मियों में लाहुल और बाहर के क्षेत्रों के बीच ऊंचे-ऊंचे दर्रों से होकर ही लोग आर-पार हो सकते थे और परिस्थिति आज भी काफी कुछ वैसी ही है। बेशक आज यातायात के कई साधनों की सुविधाएं उपलब्ध हैं। इसका एकाकीपन भी अभी मौजूद है।

इसके बावजूद भी बहुत से लोग लाहुल आते थे और यहां के लोग बाहर जाते थे। विशेष भौगोलिक परिस्थिति के कारण लाहुल के लोगों को गर्मी और सर्दी दोनों में अपने पेशे के लिए प्रायः घर से, बल्कि लाहुल से, बाहर रहना पड़ता था, जिनमें परिवार के लगभग आधे सदस्य होते थे।

वैसे यहां बाहर से बहुत कम लोग आते थे। परन्तु कुछ लोग यहां विशेष उद्देश्य से हर साल आते थे। जैसे कुल्लू, मण्डी, कांगड़ा और चम्बा के गद्दी लोग अपने भेड़ों के झुंड को लेकर प्रत्येक वर्ष लाहुल आते थे। यहां कई गांवों के नज़दीक उनके थाच होते थे और वे दूर-दूर तक यानि लिङ्ती, लाहुल की आखिरी सीमा तक जाते थे। उन दिनों बाज़ार और दुकान नहीं होते थे। अतः वे गांव के किसी परिवार से अपना राशन बगैरा लेते थे और उनको भेड़ बकरी आदि देते थे। यह सम्बन्ध पक्का होता था और एक दूसरे को मित्र कहकर सम्बोधित करते थे।

इसके अतिरिक्त लाहुल की एक और विशेषता यह है कि यह एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। यह रास्ता एक ओर लद्दाख से होकर काशगर और यारकन्द तक मध्य ऐशिया पहुंचता था तो दूसरी ओर कुल्लू, मण्डी, कांगड़ा, अमृतसर, लाहौर से होकर अफगानिस्तान में काबुल और कन्धार तक पहुंचता था और उत्तरी भारत के उपजाऊ मैदानी क्षेत्रों को भी अपने साथ जोड़ता था। यह मार्ग गर्मियों में बहुत व्यस्त रहता था। इस मार्ग पर घोड़े, खच्चर और भेड़ बकरियों के बड़े-बड़े काफिले निरन्तर चलते रहते थे। इनके साथ कई यात्री भी चले होते थे जिनमें कुछ सन्त और विद्वान भी थे। विद्वानों के सामने उस समय जो भी महत्वपूर्ण बात या दृश्य आयी, उन्होंने नोट कर लिया और अपनी यात्रा विवरणियों में प्रकाशित किया। ये विवरणियां सूचनाप्रदायक, रोचक और विश्वसनीय हैं। अतः ये बहुमूल्य ऐतिहासिक दस्तावेज़ हैं। इनमें कुछ प्रसिद्ध विद्वान यात्री जिन्होंने लाहुल के विषय में कुछ लिखा है, इस प्रकार है - ह्यूनसांग, अज़ेबेडो, तगछ़ङ रेपा, ङ्वङ छेरिङ, मूरक्राफ्ट, राहुल सांकृत्यायन, हारकोर्ट, सी.जी.ब्रूस, फ्रांके, आदि। हमें लाहुल के विषय में इनसे महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। नीचे कुछ विशिष्ट यात्रियों के विवरणियों के कुछ अंश दे रहे हैं।

ह्यूनसांग ने सातवीं सदी के पूर्वार्ध में भारत में भ्रमण किया। इस बीच वे कुल्लू तक पहुंचे। यहां उन्होंने ज़िक्र किया है कि यहां से उत्तर की ओर चट्टानों से होकर खतरनाक रास्तों के ज़रिए लगभग 1800 या 1900 ली अर्थात 300 या 320 मील जाएंगे तो हम लो-ऊ-लो नामक देश में पहुंचते हैं।

कुछ विद्वानों ने इसे लाहुल मानने से इन्कार किया है। उनका एक मात्र तर्क यह है कि यह दूरी सही नहीं है। ह्यूनसांग ने यह तथ्य दूसरों से सुनकर लिखा है। वैसे इस नाम के किसी देश की कुल्लू के उत्तर में कोई कल्पना नहीं कर सकता है। और अधिकतर विद्वान इसे लाहुल ही मानते हैं।

मूरक्राफ्ट ने 1819 से लेकर 1825 तक गढ़वाल, पंजाब, कश्मीर, लद्दाख, कुंदुज़, बोखारा, आदि में एक बड़े काफिले के साथ यात्रा की। उनके लेख में एक वैज्ञानिक और विद्वान यात्री की छाप दिखाई देती है। वे लाहुल से होकर अगस्त 1820 में गुज़रे थे।

मूरक्राफ्ट अपने यात्रा वर्णन में लिखते हैं, कुल्लू के ऊपर की ओर पहाड़ की धार में खाली जगह बनी हुई है। इसे रिटांक जोत या घाट कहते हैं। यह लगभग पौना मील समतल है। दूसरी ओर घाट के नीचे दो तालाब हैं जो गेपांग देवता को समर्पित हैं और पवित्र माने जाते हैं। (ये दोनों तालाब अब नहीं दिखाई देते हैं)। यहां से पांच मील नीचे चन्द्र नदी बहती है जिस पर झूलता हुआ पुल है। खोकसर में दो गांव हैं, एक पुल से उत्तर की ओर तथा दूसरा पूर्व की ओर। (पहला गांव खोकसर तथा पुल के पास वाला गांव ग्रम्फुग् कहलाता है)। दोनों गांव के गिर्द जौ (नंगा जौ) और भ्रेस की फसल-युक्त खेत हैं।

मकान पत्थर के बने हुए हैं, जिन पर मिट्टी की लिपाई की हुई है। छत समतल हैं। यहां हमने लाल अल्पाईन स्ट्राबेरी देखे जो बहुत स्वादिष्ट थे। दूसरे कम स्वाद वाली प्रजातियां भी थी। घोड़ों को नदी पार कराने में कठिनाई आने के कारण हमें यहां एक दिन रुकना पड़ा। एक घोड़ा जिसके गले में रस्सी बांधी थी पार करते करते डूब गया। शेष 'डेरी-सहायकों' की मदद से खुले में तैर कर

पार करने में कामयाब हुए। नदी का बहाव बहुत शक्तिशाली और तीव्र था जो चट्टानों से उफनती हुई बह रही थी। जहां झूला था, यह जगह नब्बे फुट चौड़ी थी। और यह इसी लिए चुनी गयी थी क्योंकि यह सबसे तंग जगह थी। यह पुल भोजपत्र की टहनियों को बुनकर बनाया गया था। पुल का फर्श भी इसी से बना हुआ था।

खोकसर से हमारा रास्ता पहाड़ी के साथ-साथ चल रहा था और नदी हमारी बांई ओर थी। खोकसर में पत्थरों के चबूतरे बने हुए मिले। उन पर अलग-अलग आकार के पत्थर रखे हुए थे जिन पर दो-तीन लिपियों में कुछ वाक्य उकेरे हुए थे, जिनसे मैं परिचित नहीं था। ऐसी ही कृतियां मैंने हियूंदेश में देखे थे, जहां हमें यह बताया गया था कि ये वहां के प्रमुख लामा ने रखवाए हैं। परन्तु यहां यह बताया गया कि ये मृत व्यक्तियों की स्मृति में बनाए गए हैं जिन पर उनके नाम, आयु, चरित्र आदि का वर्णन होता है। (इन पत्थरों पर प्रायः मन्त्र ही खुदे होते हैं। कुछ चैत्य (छोर्तेन) मृत व्यक्ति की स्मृति में बनाए जाते हैं)। आगे जाकर कुछ और कृतियां घरों या मीनार की तरह बनी हुई मिली। ये ऊपर से पतली और नीचे चौड़ी तथा लगभग 12 से 14 फुट ऊंची थी। (ये छोर्तेन यानि चैत्य थे)। उन पर सफेद मिट्टी का रंग किया हुआ था।

रास्ते में दो हिन्दू फकीर मिले जो त्रिलोकनाथ जा रहे थे। सिस्सू में वहां के दो गांवों के बीच बहती नदी को पार किया जो चट्टानों को चीरती हुई बह रही थी। यहां कुरांट फल देखे जो मैंने नीति (गढ़वाल) में देखे थे। यहां एक चपटे पत्थर पर कुछ मूर्तियां और फूल उकेरे हुए थे। (यह अभी भी है)। आगे एक पत्थर के द्वार से होकर गुज़रे जो गेपंग को समर्पित था। यह दो ओर से फूलों से सजाया हुआ था और ऊपर रंग बिरंगे चकमक पत्थर रखे हुए थे। (यह अब नहीं है)। दूसरे गांव के अन्त में एक और अलंकृत पत्थर था। (यहां ऐसे दो पत्थर हैं)। यहां सर्वप्रथम गूज़बेरी का पौधा देखा।

हम रात सिस्सू के तीसरे गांव ठहरे (संभवतः रोपसङ)। यहां गांव छोटे हैं लेकिन यहां जौ और गेहूं की फसल से प्रतीत होता है कि भूमि उपजाऊ है और लोगों ने परिश्रम किया है। दूसरे दिन हम कई छोटे छोटे गांवो से होकर गुज़रे जो नदी के दोनों ओर थे। वहां इन्हीं फसलों के खेत थे। हरेक गांव में बेली के जंगल लगे हुए थे जिनकी टहनियों से टोकरियां बनती हैं। चकोर बहुत हैं। उस दिन रात को बारिश पड़ी और ऊंचाइयों पर बर्फ।

इक्कीस अगस्त को हमारा रास्ता ढलानदार पहाड़ से होकर गुज़र रहा था। वहां ऊपर से लगातार पत्थर गिरने का खतरा था। ऊपर चढ़ते और नीचे उतरते हुए अन्त में फिर हम नदी के तट पर पहुंचे। यहां हमने एक झूलते हुए पुल से नदी पार किया। पूर्व से आती नदी यहां चन्द्र से मिलती है। यहां के कानूनगो ने इसका नाम सूरज भागा बताया। इसके बाद यह चन्द्र भागा कहलाती है और किश्तवाड़ में यह चिनाब कहलाती है। (यहां गोंधला की कोठी का वर्णन नहीं आया है।)।

संगम से उत्तर-पश्चिम की ओर तकरीबन सौ कदम पर तन्दी गांव है और सामने गुशाल, जो काफी बड़ा है। तान्दी छोटा है। यहां एक बड़ा घर है जो कुल्लू के राजा के अधीन है। यहां लोगों से कर के रूप में एकत्रित किए गए अनाज का भंडारण किया जाता है। यहां दो अधिकारी तैनात हैं, हाकिम और कानूनगो। लाहुल के किसानों के खेतों पर कुल्लू के राजा का अधिकार है, सिवाय बरकलनाक (बर्गुल) आदि चार गांव के, जो लद्दाख को कर देते हैं। यहां के लोग यहां से चम्बा, कुल्लू और लद्दाख को माल ढोने का काम करते हैं जिनमें मुख्यतया ऊन है। इनके खच्चर तेरह बालिश्त ऊंचे, अच्छे, तगड़े और पहाड़ी रास्ते में चलने में सधे हुए हैं। भेड़ें भी सामान और अनाज ढोने में प्रयोग होते हैं। तन्दी से लेह तक एक खच्चर का किराया, जो दो पक्के मण उठाता है, का किराया ग्यारह रुपये है। हमने तेरह रुपये दिए। हमने यहां काफी मात्रा में गेहूं का आटा खरीदा क्योंकि लेह में अनाज काफी महंगा है।

यहां पुरुष और महिलाएं गर्मी और सर्दी में ऊनी कपड़े पहनती हैं। ये स्वयं कपड़ा बुनते हैं। हमने दो पट्टियां तीन रुपये में खरीदी जो इक्कीस फुट लम्बा और दस इंच चौड़ा था। यहां पुरुष भी आभूषण के शौकीन हैं, जैसे कि महिलाएं। कान में मुड़की, बाजू में कंगन और माला पहनते हैं। प्रत्येक पुरुष कमर में लटकता हुआ एक चाकू रखता है।

आग जलाने के लिए लोहे का चकमक, पौधे का ऊन और चकमक पत्थर, चमड़े के बटुए में रखते हैं। चकमक बाहर से आता है और इस पर बहुत कलाकारी की गई है। इंगलैंड में बनाकर यहां आयात किया जा सकता है।

अठाइस अगस्त को बीलिंग में रुके। यहां बेली का एक वृक्ष था जिसका घेरा सोलह फुट था। आगे सेब के वृक्ष मिले परन्तु फल छोटे थे। सलसल और करिंग से होकर गुज़रे। भेड़ों के कई झुंड मिले जो वापिस कांगड़ा जा रहे थे। सामने तिनो गांव था। उसके सामने सफेद ऊंचा एक चैत्य था। वहां पहाड़ की तलहटी में भेड़ों के झुंड थे जिनमें कई हजार भेड़ें थी।

कोलोङ में यहां के मुखिया धर्मसिंह के किले के निकट तम्बू लगाया। दूसरे दिन वह मिलने आया। वह बीमार था। उसे मैंने दवाई दी। लोग उसकी बहुत इज़्ज़त करते हैं। दारचा के पास लबरङ आखिरी गांव है। यहां मूरक्राफ्ट का वर्णन समाप्त होता है।

दारचा यहां का आखिरी गांव है। लबरंग नाम का कोई गांव नहीं है। सन् 1631 ई० में ईसाई जेसुट पादरी अज़ेबेडो लद्दाख से कुल्लू

प्राचीन ग्राम्य लाहुल का एक दृश्य Courtesy : Internet

और पंजाब की ओर जाते हुए सितम्बर के महीने में एक रात एक परिवार के साथ यहां रहा। वे लिखते हैं उन्हें वहां खमीर से उठाई हुई रोटी दूध के साथ दिया गया जो उनका उत्तम भोजन था। वे यह भी लिखते हैं कि 'करजा' अर्थात् लाहुल कुल्लू के अधीन है।

महा पंडित राहुल सांकृत्यायन (1893-1963) बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे बहुत बड़े घुमक्कड़ थे। एशिया के कई देशों की उन्होंने यात्रा की थी। वे चार बार तिब्बत गए। कई घोड़े लाद कर ग्रन्थ भारत लाए जिनमें संस्कृत की पोथियों की मूल प्रतियां, कुछ के फोटो व कुछ की अनुवादित प्रतियां थी।

लाहुल की यात्रा उन्होंने सन 1933 ई० में की थी। वे लद्दाख से लाहुल की ओर आए। उनके साथ 50-60 खच्चरों का काफिला था। 24 और 25 सितम्बर को उन्हें फालोङ-डंडा अर्थात लिङ्ती में, जहां लद्दाख और लाहुल की प्राचीन सीमा है, बर्फ पड़ने के कारण दो दिन रुकना पड़ा। 26 सितम्बर को यात्रा आरम्भ की और कुल्लू वे एक अक्तूबर की रात को पहुंचे। तीन दिन उन्होंने लाहुल में बिताए। नीचे उनकी यात्रा के वर्णन का एक अंश दिया जा रहा है। उनकी यह यात्रा दूसरी दिशा से शुरू होती है।

रात को वे पटसेऊ अर्थात दो-ज़म में रहे। 27 तारीख को उन्हें लाहुल का पहला गांव मिला। वे लिखते हैं- पटसेऊ एक जनशून्य स्थान है। सावन के महीने में यहां एक बड़ा मेला लगता है, जिसमें कुल्लू, लाहुल, स्पिति, लद्दाख, ज़ांस्कर और तिब्बत के बहुत से लोग जमा होते हैं और अनाज, भेड़, बकरी, ऊन, घोड़े, गधे, आदि का क्रय-विक्रय करते हैं। भागा की बाईं ओर एक डाकबंगला और एक सराय है। भागा की दाहिनी ओर भी एक सराय है। नदी पर लकड़ी का पुल है। पुल पार कर मैं दाहिनी ओर की सराय में गया। देखा वहां दो लाहुली नौजवान ठहरे हैं। एक चाय बना रहा है और दूसरा भेड़ों के बोझ वाले ऊन की छल्ली लगा रहा है। मेरा वहां आना उन्हें अरुचिकर ज़रूर लगा लेकिन मैंने उनसे कह दिया कि साथियों के आते ही मैं वहां से चला जाऊंगा। घोड़े को एक कोने में बांध दिया।

सराय के आंगन में भेड़ों की मेंगनियों की एक मोटी तह जमी हुई थी जो वर्षा में भीग गयी थी। इसलिए वहां बैठना तो नहीं हो सकता था। खड़े-खड़े लाहुली को ऊन की गोनों की तह लगाते देखने लगा। थोड़ी देर बाद उनका साथी भी मदद देने के लिए आ

गया। पांच-पांच गोने एक के ऊपर एक रखी गई। सराय के दोनों तरफ के मकानों में तीन-तीन द्वार थे और एक ओर पांच द्वार थे। खुले हिस्से को उन्होंने अपनी ऊन की गोनों से घेर दिया। सिर्फ एक छोटा सा रास्ता रह गया। जिसके बाहर दो सफेद और काले कुत्ते बैठे हुए थे। छल्ली लगाकर एक ने बोझों को गिना। मैंने तो समझा कि वह एक बीस दो बीस गिनेगा किन्तु देखा वह वर्ग्य-थम्प अर्थात् एक सौ (100) तक गिन सकता है। बोझे दो सौ से ज़्यादा थे। पूछने पर मालूम हुआ कि वह चङ-थङ से इस ऊन को ला रहे हैं। वर्षों पहले से चङ-थङीय खानाबदोशों से ये प्रत्येक भेड़ की ऊन का ठेका किए रहते हैं। मालिक भेड़ें गिनाकर चाय, चीनी तथा दूसरी चीज़ों एवं नकद के रूप में दाम ले लेता है। ऊन का काटना-कूटना खरीदार का काम रहता है। यह ऊन कुल्लू को जा रहा है, जहां इसे धारीवाल और कानपुर के ऊनी मिलों वाले ले लेंगे। थोड़ी देर के बाद चर कर भेड़ें आ गईं। भीतर करते वक्त एक एक भेड़ गिनी जाने लगी। मालूम हुआ एक भेड़ कम है। दो आदमी ऊपर की ओर गए। सीटियां बजा-बजा कर भेड़ों को बुलाने लगे। उनके ऊपर बढ़ते जाने के साथ-साथ सीटी की आवाज़ भी दूर होती जाती थी। यद्यपि नीचे नदी की घरघराहट के कारण मुझे खच्चरों के घंटे की आवाज़ नहीं सुनाई दी। किन्तु भेड़ वाले ने बतलाया तुम्हारे खच्चर उस पार की सराय की ओर गए हैं। आदमी ने कुत्तों को रोका और मैं घोड़ा लेकर घेरे से बाहर हो गया।

पूरे एक सप्ताह बाद आज दोपहर को बारह बजे पहला घर देखने को मिला। यह दारचा गांव था। अब आसपास पहाड़ों पर काफी देवदार के वृक्ष थे। गांव में यहां भी लद्दाख वाले सफेदे और बेली के वृक्ष मौजूद थे। घर का ढंग ही लद्दाखी नहीं था बल्कि थोड़ा नीचे मैंने कुछ स्त्रियों को पीठ पर बोझा ले गुज़रते देखा। उसकी नाक में सोने की दुअन्नी भर की लौंग भी पड़ी हुई थी। मैं तो समझने लगा, सारे लाहुल में स्त्रियों ने आभूषणों में लद्दाखी पि-रक और लौंग को अपनाया है। किन्तु आगे देखने से पता लगा कि लद्दाखी पि-रक् सिर्फ दारचा गांव में ही है।

इस पहले घर से नीचे दूर, तीन धारों का संगम दिखाई दिया। हमारी बिचली धार की बाईं ओर से एक और धार आ रही थी और दाहिनी धार को पुल से पार करने के लिए अब आधा मील दाहिनी ओर मुड़ना पड़ा। पुल पार कर फिर भागा की सम्मलित धार की ओर लौटा। मोड़ का रास्ता चढ़ाई का था। ठीक मोड़ के कोने पर बहुत दूर तक बिखरी छोटी बड़ी चट्टानों का ढेर था जिस पर कहीं कहीं एकाध देवदार के वृक्ष भी खड़े थे। मैं तो समझ बैठा कि लाखों वर्षों तक टूट-टूट कर जमा होती पहाड़ी चट्टानों का यह ढेर है। पर उस दिन रात को बातचीत के समय इस ढेर का सच्चा इतिहास मालूम हुआ। बहुत पहले इसी स्थान पर एक बड़ा गांव था जिसमें एक सौ घर थे। एक दिन गांव के सारे लोग एकत्र हो भोज कर रहे थे। उसी समय बड़े लाचा की ओर से कोई वृद्ध आया। उसे साधारण भोटिया समझ सभी लोगों ने उसका तिरस्कार कर पंक्ति के नीचे की ओर कर दिया। सबसे अन्त में एक लड़का बैठा हुआ था। उसने बूढ़े को अपने आसन दे अपने से पहले स्थान पर बैठाया। भोज और छङ के बाद वृद्ध अन्तर्ध्यान हो गया। लोगों ने नाच-रंग शुरू किया। उसी समय एक भारी तूफान आया जिसके साथ लाखों भारी-भारी चट्टानें पहाड़ से गिरने लगीं। सारा गांव उन के नीचे दब गया। तूफान ने उस लड़के को उड़ाकर दरिया के पार कर दिया। उसकी सन्तान अब भी मौजूद है। और शायद यह ऐतिहासिक घटना भी उसी की परम्परा से सुनाई गई है। (चट्टानों से भरा यह मैदान अभी भी वैसा ही है। इस स्थान को ज़ेमुग कहते हैं।)

आगे राहुल जी बताते हैं कि ये सच्ची कथाएं कोलोङ के पन्द्रह वर्षीय ठाकुर कल-सङ-दवा से मालूम हुई जो उस समय कुल्लू हाईस्कूल में नवें दर्जे में पढ़ रहे थे।

इन थोड़े से विवरणों से हमें लाहुल के विषय में कई महत्वपूर्ण विषयों पर ज्ञान हो जाता है। ■

....

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. सांकृत्यायन, राहुलः 1956, एशिया के दुर्गम खंडों में। नव भारती, इलाहबाद।

2. Beal, Samuel. 1884. Si-yu-ki, Buddhist Records of the Western World, London, reprinted, Munshiram Manoharlal, 1969, New Delhi.

3. Moorcroft, W. and Trebeck, G. 1841. Travels in the Himalayan Provinces of Hindustan and the Panjab, Ladakh and Kashmir, etc., Vol. I, London, reprinted, Sagar Publication, 1971, New Delhi.

4. Wessels, S.J.C. 1924. Early Jesuit Travellers in Central Asia, The Hague, reprinted Asian Educational Services, 1992, New Delhi.

सत्त्वों के दुःख निवारण तथा बुद्ध धर्म

लाल चन्द ढिस्सा

बुद्ध के परिवार के लोगो, विद्वानो और दोस्तो! आज आपके सामने खड़े होकर बुद्ध धर्म द्वारा सत्त्वों के दुःखों का निवारण विषय पर बोलते हुए हर्ष की अनुभूति हो रही है। यहां मैं बता रहा हूँ कि मैं कोई बौद्ध विद्वान नहीं हूँ। हिन्दू व्यवस्था का सताया, दुतकारा एवं शोषण का शिकार हुआ एक दलित समाज कार्यकर्त्ता हूँ। मैं बुद्ध धर्म के सिद्धांतों को नहीं जानता, मैं तो उसके द्वारा लाई गई क्रांति के प्रभावों को मानता हूँ। इस लिए उस महान जीवन पद्धति की व्याख्याएं नहीं कर सकता और न ही करना चाहूंगा, न ही व्यक्तिगत सत्त्वों की बात करना चाहूंगा। यहां पर तो मैं इस देश के विस्तृत समाज के सत्त्वों के दुःखों के निवारण की बात करूंगा।

इस देश की सबसे बड़ी समस्या या लाखों-करोड़ों लोगों या सत्त्वों का दुख इसकी सामाजिक संरचना में निहित है। हिन्दू समाज व्यवस्था जिसका आधार जन्माधारित जातिगत विभेद है। यह विभेद जीवन के हर पहलू में व्याप्त है। समाज के समरस संचालन के नाम पर स्थापित सामाजिक स्तरीकरण ने यहां के एक तिहाई मनुष्यों का जीवन पशुओं से बदतर कर रखा है। समाज में किसी व्यक्ति की परिस्थिति या हेसियत क्या होगी यह उसका जन्म तय कर देता है। व्यक्ति जिस जाति में पैदा होगा, वही उसकी अंतिम सीमा बन कर रह जाती है। उसका काम-धंधा, उठना-बैठना, खाना-पीना, रोटी-बेटी का संबंध सब कुछ उसके जन्म के आधार पर तय हो जाता है। उस की सामाजिक गतिशीलता समाप्त हो जाती है। यह सामाजिक संरचना की व्यवस्था एक अभेद्य किले के समान है। व्यक्ति न तो उससे बाहर जा सकता है और न ही कोई उसके अन्दर आ सकता है। यह श्रम विभाजन के नाम पर गठित संस्था, व्यक्तियों और समाजों-समुदायों का भाग्य निर्धारित कर देती है। यह निर्धारित कर देती है कि किसे क्या काम करना है, कहां जाना है, क्या खाना है, क्या पहनना है? यह व्यवस्था इतनी व्यापक है कि इसका प्रभाव व्यक्तियों और समाज-समुदायों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक यहां तक कि उसकी धार्मिक स्थिति और परिस्थिति को भी प्रभावित, तय और संचालित करती है। यह जाति व्यवस्था ही है जो तय करती है किस के स्वामित्व में कितने आर्थिक संसाधन रहेंगे, किस के पास कितनी सम्पत्ति रहेगी? किसकी सामाजिक परिस्थिति या हेसियत ऊंची और किस की नीची और कितनी ऊंची व नीची होगी। किसके आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार कितने होंगे? कौन क्या करेगा, उच्चतर प्रकार के कार्य जैसे पूजा-पाठ, पढ़ाई-लिखाई, शासन-प्रशासन, व्यापार-धन्धे, धन सम्बंधी कार्य कौन करेगा और कौन सब से निम्न कहे जाने वाले कार्य मेला ढोना, चर्मकारी आदि-आदि करेगा?

सदियों से दलित समाज के हिस्से में सिर्फ और सिर्फ निषेधाधिकार ही रहे हैं। वे पढ़-लिख नहीं सकते, शासन-प्रशासन का कार्य नहीं कर सकते, व्यवसाय या धन का कार्य नहीं कर सकते। सम्पत्ति और धन संचित करें, विद्या प्राप्त करें तो उन्हें दण्ड भोगना होता था। सीधे दण्ड न दिया जा सके तो किसी न किसी रूप में उनसे उनका कौशल, अवसर या गुण छीन ही लिया जाता था। जैसे महाभारत में कृष्ण द्वारा कर्ण से उसका कवच-कुंडल छीनना और द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य का अंगूठा मांगना। ताकि दलित कभी किसी तरह उच्च जाति की सत्ता एवं परिस्थिति को चुनौती न दे सके। उसे तो सदा के लिए द्विजों की सेवा ही करनी थी, उसी से उसकी मुक्ति हो सकती थी। इसलिए इस देश की सबसे बड़ी समस्या तो यही जन्माधारित जातिगत विभेद और असहनीस दबाव रहा है और रहेगा।

इस विभेद और नफरत की जड़ की कोई सीमा नहीं है। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक क्षेत्रों में तो जातिगत विभेद रहा ही है न्यायिक क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रह पाया, इसमें भी यह बहुत गहरे से बहुत घिनौने ढंग से विद्यमान है। इसका साफ उदाहरण हमें मनु द्वारा लिखित मनुस्मृति में मिल जाता है। जब मनु कहता है कि एक न्यायाधीश ब्राह्मण को सत्य की, क्षत्रिय को रथ तथा धनुष आदि आयुध की, वैश्य को पशु, कृषि और व्यापार की तथा शूद्र को सभी गंभीर पातकों (अपराध) के लगने की शपथ करानी चाहिए (अध्याय 8 श्लोक 113)। ब्राह्मण की अवमानना करने वाले (गाली देने वाले) क्षत्रिय पर सौ पणों, वैश्य पर डेढ़ सौ या दो सौ पणों का दण्ड लगाना चाहिए और शूद्र को तो मृत्युदण्ड ही देना चाहिए (अध्याय 8 श्लोक 267)। मनु की यह व्यवस्था है कि शूद्र जिस किसी अंग (हाथ, पैर आदि) से द्विजातियों (तीनों उच्च जातियों) पर प्रहार करे, उसके अंग काट डाले जाने चाहिए (अध्याय 8 श्लोक 279)। ब्राह्मणों को छोड़कर तीन वर्णों के लोग पर स्त्री (दूसरे की स्त्री के साथ) गमन के लिए मृत्यु दण्ड पाने योग्य हैं; चारों वर्णों की स्त्रियां हमेशा रक्षणीय होती हैं (अध्याय 8 श्लोक 359)। इन समस्त श्लोकों से साफ होता है कि तब की न्याय व्यवस्था भी जातिगत

विभेद पर आधारित थी और व्यक्ति के अपराध और दण्ड भी जाति के आधार पर निर्धारित किए गए थे। जो आज भी बदस्तूर जारी है। जिसका उदाहरण है 'द इन्डियन एक्सप्रैस' में 10 मई, 2016 को छपा एक समाचार जिसके अनुसार हाल ही में नेशनल लॉ युनिवर्सिटी, दिल्ली के द्वारा मौत की सजा पर 'डेथ पेनल्टी इन्डिया रिपोर्ट' (डी.पी.आई.आर. नाम के) एक रिसर्च प्रोजेक्ट पर कार्य किया गया। जिसकी रिपोर्ट में चौंकाने वाले तथ्य सामने आये हैं। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि जनवरी, 2015 में देश में मौत की सज़ा प्राप्त 385 लोगों में 24.5 प्रतिशत अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, 34.6 प्रतिशत अन्य पिछड़े वर्ग तथा 20 प्रतिशत अल्पसंख्यक समुदायों से सम्बंधित लोग हैं। इस प्रकार का न्यायिक विभेद न जाने कब से चलता आ रहा है?

मैं बुद्ध धर्म की व्याख्याएं नहीं करूंगा। मैं तो इस धर्म की शक्ति और आकर्षण के बारे में बताने का प्रयास करूंगा। इस धर्म में कितनी शक्ति और कितना आकर्षण था, इसका अनुमान इस बात से आसानी से लगाया जा सकता है कि अशोक जैसा निरंकुश, निष्ठुर और निर्दयी शासक, जिसे 'पशुबली' भी कहा जाता था, कहा जाता है कभी-कभी उसके अन्दर का पशु जाग जाता था और वह पशुओं सा व्यवहार करता था। जिसने सिर्फ कलिंग के युद्ध में ही सैनिकों के अतिरिक्त लाखों साधारण नागरिकों को मौत के घाट उतार दिया था, का हृदय परिवर्तन कर दिया। यहां यह बताना भी आवश्यक है कि अशोक अपनी सैन्य शक्ति के प्रदर्शन या लाखों लोगों के कत्ल करने पर अशोक महान या प्रियदर्शिनी नहीं बना, उसे तो बुद्ध धर्म की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार ने महान बना दिया। अशोक के हृदय परिवर्तन के बाद जब उसने बुद्ध धर्म की शरण ली और उसमें दीक्षित हुआ, उसके बाद ही वह समस्त जगत के कल्याण की योजनाएं बना पाया और उन पर संजीदा होकर काम किया। बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार न सिर्फ भारत में अपितु सुदूर दक्षिण और पूर्व में करने के लिए अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा तक को भिक्षु और भिक्षुणी बना कर भेजा। बुद्ध धर्म की शिक्षाओं को अशोक ने अपने साम्राज्य के अन्दर और उसकी सीमाओं पर शिलाओं, स्तम्भों तथा गुफाओं में राजमार्गों पर खुदवाया, जिस का उद्देश्य था अपनी प्रजा का पथ प्रदर्शन करके उन्हें अन्धकार से उजाले की ओर ले जाना और उसका न केवल भौतिक अपितु बौद्धिक एवं आध्यात्मिक कल्याण भी था।

बुद्ध धर्म, दुनिया के लिए एक धर्म मात्र नहीं है, अपितु एक प्रकाशपुंज है। मानव जाति के लिए दिशा सूचक है यह आडम्बरों, पाखंडों एवं अन्धविश्वासों से मुक्त एक साधारण एवं सीधी जीवन पद्धति है, जो मनुष्य के जीवन को सहज सुगम, एवं सफल बनाता है। यह धर्म मानव को मानव समाज में 'समान्तर सह-अस्तित्व' तथा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं एवं जीवों के साथ 'सह-अस्तित्व' से रहने की बात सिखाता है। यह वह धर्म है जो प्रज्ञा, करुणा एवं समानता पर आधारित है। यही एक धर्म है जिसमें उसके संस्थापक को ज्ञान प्राप्त हुआ। उसे प्रकाश मिला, उसको रास्ता मिला। वह गौतम व सिद्धार्थ से 'बुद्ध' बना। यह वह धर्म है जिसको स्थापित करने वाले के कई नाम हैं गौतम, सिद्धार्थ, शाक्यमुनि, तथागत, बुद्ध आदि-आदि। इसका कारण भी सम्भवतः यही है कि जनसाधारण इसे अपनी सुविधानुसार पुकार सके।

बुद्ध धर्म मध्यमार्गी धर्म है इसलिए इसे एक जीवन पद्धति भी माना जा सकता है। सम्भवतः इसी कारण कालांतर में इसके एक हिस्से द्वारा इसमें कुछ परिवर्तन किए गए। यद्यपि प्रारम्भ में बुद्ध धर्म में मूर्ति पूजा नहीं थी लेकिन ईसा की पहली सदी के बाद इसमें महायान का उदय हुआ और इसके साथ ही मूर्ति पूजा का आरम्भ भी हुआ। इसका उदाहरण है महापरिनिब्बान सुत्त का यह कथन। परिनिर्वाण से पूर्व आनंद ने पूछाः भगवान हम तथागत (बुद्ध का दूसरा नाम) के अवशेषों का क्या करेगें?

बुद्ध ने कहा, ''तथागत के अवशेषों को विशेष आदर देकर खुद को मत रोको। धर्मोत्साही बनो, अपनी भलाई के लिए प्रयास करो।''

लेकिन विशेष आग्रह करने पर बुद्ध बोलेः ''उन्हें तथागत के लिए चार महापंथों के चौक पर थूप (स्तूप का पालि रूप) बनाना चाहिए। जो भी वहां धूप या माला चढ़ाएगा... या वहां सिर नवाएगा, या वहां पर हृदय में शांति लाएगा, उन सबके लिए वह चिरकाल तक सुख और आनंद का कारण बनेगा।'' उसका अर्थ सम्भवतः इसके मध्य मार्गी होने में निहित था।

बुद्ध धर्म घोर तपस्या और विषयासक्ति के बीच मध्य मार्ग अपना कर मनुष्य को दुनिया के दुःखों से मुक्ति पाने की शिक्षा देता है, बुद्ध धर्म की सच्चाई ही यही है। इसका एक असर यह हुआ, अब शिक्षा के क्षेत्र में जाति व वर्ण की शर्त खत्म हो गई और जनसाधारण की पहुंच शिक्षा तक हो गई थी। शिक्षा का प्रचार-प्रसार न सिर्फ इस देश के समाज के हर वर्ग, वर्ण या जाति के अन्दर किया गया अपितु उसका प्रचार-प्रसार देश-काल के बाहर भी किया गया। इसके उदाहरण हैं, वे असंख्य बौध भिक्षु-भिक्षुणियों के कष्टकारी प्रयास जो कि दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों में भ्रमण पर जाते थे। वे धम्म के प्रचारक मन में मिशनरी भावना लिए हुए दुनिया के देशों तिब्बत, श्रीलंका, काम्बोडिया, इन्डोनेशिया, जापान, चीन और अन्य कई देशों में गये और वहां पर न केवल बुद्ध धर्म का अपितु इस देश की संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान का भी प्रचार-प्रसार किया। यद्यपि देखने में तो शिक्षा का स्वरूप धर्म या धम्म की शिक्षा तक ही सीमित लगता है, परन्तु वह सामाजिक उत्तरदायित्व बोध करवाने वाली थी। न सिर्फ समाज या मानव मात्र अपितु जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों की भलाई और रक्षा की शिक्षा दी जाती थी। बुद्ध धर्म

के सामाजिक सरोकारों से भरी शिक्षाओं को शिलाओं और स्तम्भों में खुदवाया गया जिससे कि लोग न सिर्फ समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत हों अपितु पर्यावरण एवं परिस्थिति के बारे में उतने ही जागृत रहें...'।

शिक्षा और पर्यावरण के अतिरिक्त भी बुद्ध धर्म के प्रभाव में समाज, मनुष्य एवं प्राणियों के कल्याण कार्यों में व्यक्तिगत, सामाजिक व राजकीय स्तर पर बहुत से परिवर्तन हुए। बुद्ध धर्म में प्राणियों के स्वास्थ्य की भी चिन्ता की गई है। बुद्ध धर्म के आधारों में करुणा का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। बुद्ध स्वयं करुणा के सागर थे इसलिए उन्होंने न सिर्फ मानव स्वास्थ्य अपितु समस्त प्राणियों के स्वास्थय तथा कल्याण की शिक्षाएं दी। जिसके चलते कालांतर में अशोक महान जैसे राजाओं, जो बुद्ध धर्म के अनुयायी थे, ने अपने-अपने राज्यों में मनुष्यों के लिए भी और पशु-पक्षियों के लिए भी अस्पताल बनवाए।

इसके अतिरिक्त भी जगह-जगह पर संघाराम तथा विहार आदि बनवाये गए। जिससे कि यात्रियों को ठहरने तथा खाने-पीने की असुविधा न हो। इसके अतिरिक्त सड़क के दोनों किनारों पर छायादार पेड़ लगाए, जिसके नीचे यात्री आराम कर सकें। पीने के पानी के प्याऊ भी बनवाए, कुएं खुदवाए गए ताकि प्राणी मात्र का कल्याण हो।

एक बौद्ध होना ही अपने आप में महत्वपूर्ण है, परन्तु आज तो उसका और भी अधिक महत्व हो गया है। आज देश-दुनिया के सामने अन्धेरा छाता जा रहा है। अन्धेरा चारों तरफ को बढ़ रहा है, न सिर्फ मानव मात्र का अस्तित्व अपितु समस्त जगत का अस्तित्व ही खतरे में लगता है। दुनिया के बड़े-बड़े देश महाशक्तियां बनने की होड़ में एक से बढ़-चढ़ कर एक से एक विध्वंसक बना रहे हैं। प्रतिस्पर्धा सीमा से अधिक बढ़ गई है। यदाकदा एक-दूसरे के क्षेत्रों पर कब्ज़ा किया जा रहा है, कोई भी महाशक्ति दुनिया का सर्वनाश करने में सक्षम है। न सिर्फ आर्थिक बल्कि राजनैतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक शक्तियों और आवश्यकताओं का दबाव सीमा को लांघ रहा है। एक तरफ आर्थिक शक्तियां, कमज़ोरों का शोषण करने पर तुले हैं, तो दूसरी तरफ धार्मिक आधार पर गठित शक्तियां अपने चरम पर पहुंच चुकी हैं। लगता है कभी भी कुछ भी अति बुरा घटित हो सकता है। इसलिए भी समाज और दुनिया को सही रास्ता दिखाने का एक बौद्ध और बौद्ध समाज का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है। इस अन्धे युग में सही रास्ता बुद्ध के अतिरिक्त कौन दिखा सकता है, जिसका जन्म पूर्णमाशी के दिन हुआ, बुद्धत्व पूर्णिमा के दिन प्राप्त हुआ और निर्वाण भी पूर्णिमा को ही हुआ।

समाज आध्यात्मिक और नैतिक 'ब्लैक होल' की तरफ तेज़ी से बढ़ रहा है। इसलिए आज तो एक बौद्ध का समाज के प्रति, अपने प्रति

तथा अपने सह मानव के प्रति उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। आज देश को सांस्कृतिक, राजनैतिक और धार्मिक तौर पर एक विशेष तरह का बनने-बनाने का दबाव डाला जा रहा है। इसके अनेक रंगों के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। अनेक रंग की संयुक्त संस्कृति के साथ अवांछित छेड़छाड़ की जा रही है। संयुक्त सांस्कृतिक विरासत को तार-तार करने का प्रयास चल रहा है। समस्त छोटी संस्कृतियों के अस्तित्व पर ही बन आई है। इसे एक ही रंग में रंगने का पुरज़ोर प्रयास किया जा रहा है।

आज देश में शंकराचार्य को राष्ट्रीय दार्शनिक घोषित करने का एक षड़यंत्रपूर्ण प्रयास किया जा रहा है। जिस पर दृष्टि बनाये रखने की आवश्यकता है। 9वीं शताब्दी ई० में शंकराचार्य ने बौद्ध दर्शन को पराजित करने के लिए देश के चारों कोनों में चार मठों की स्थापना की। शंकराचार्य ने बौद्ध दर्शन की बराबरी 'रेत में बिना नींव के एक कुएं से' की। इससे अनुमान लगाना कठिन नहीं कि शंकराचार्य बुद्ध धर्म के कितना विरुद्ध था। शंकराचार्य ने लोगों से कहा 'जो भला चाहते हैं वे तत्काल बुद्ध धर्म को अस्वीकार करें'। इसके अतिरिक्त भी आज इस देश के आसमान में चारों तरफ 'घर वापसी, गौ रक्षा एवं भारत माता की जय' के नारे गूंज रहे हैं। 'आतंकवादी', लव जेहादी, धर्मांतरित, गौमांस भक्षी, घुसपेटिया, विध्वंसक व राष्ट्रविरोधी' शब्द समस्त मीडिया पर छाये हुए हैं। इसलिए एक बौद्ध की ज़िम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। उसे खड़े होना होगा।

यह ठीक है कि सीधा खतरा बुद्ध धर्म या बौद्ध समाज पर हाल-फिलहाल में नहीं है लेकिन इतिहास अपने आप को दोहराता है, यह निश्चित है। इसलिए भी एक बौद्ध को सतर्क और तैयार रहना होगा। इस गलतफहमी में न पड़कर कि उसे आज कोई खतरा नहीं है, लेकिन इतिहास का सबक हम सब को याद रखना होगा। यहां पर मैं हिटलर की 'नाज़ीवादी' जर्मनी में राष्ट्रवादी उत्पन्न स्थिति पर एक जर्मन विद्वान पास्तर नेमोलर की कविता की पंक्तियां दोहराना चाहूंगा, उन्होंने लिखा हैः

''पहले वे सोशलिस्टों के लिए आए और मैं चुप रहा,

क्योंकि मैं सोशलिस्ट नहीं था।

फिर वे ट्रेड यूनियन से जुड़े लोगों के लिए आए और मैं चुप रहा,

क्योंकि मैं ट्रेड यूनियनिस्ट नहीं था।

फिर वे यहूदियों के लिए आए और मैं खामोश रहा,

क्योंकि मैं यहूदी नहीं था।

फिर वे मेरे लिए आए और तब मेरे लिए बोलने वाला कोई नहीं बचा था।''

मैं बुद्ध को दुनिया का सबसे पहला और महान क्रान्तिकारी मानता हूं जिसने मानवता को अज्ञानता और अन्धकार जैसे शोषकों से स्वतंत्र करवाया। यहां मैं अपनी संपूर्ण शक्ति एवं दृढ़ता से यह भी साफ कर देना चाहता हूं कि मैं बुद्ध को किसी भी तरह और कभी भी विष्णु का अवतार नहीं मान सकता। क्यों कि बुद्ध ने ब्राह्मणवाद से विद्रोह किया था और एक नयी एवं स्वच्छंद जीवन पद्धति की स्थापना की थी। जनसाधारण विशेषकर दलितों, अछूतों, कर्णों व एकलव्यों को उस असमानता और अन्यायपूर्ण धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था के चंगुल से छुड़ाया था जो कि उनके बौद्धिक, आध्यात्मिक, मानसिक तथा भौतिक हर प्रकार के विकास में अवरोधक बनी हुई थी, वह दुबारा उसी तरफ क्यों जाएंगे? जिस बुद्ध ने आडम्बरों भरी सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था का छिन्न-भिन्न करने का कार्य किया था, वही बुद्ध फिर व्यवस्था का हिस्सा बनने को क्यों धकेला जा रहा है? जो बुद्ध, गौतम या सिद्धार्थ से बुद्ध बने, प्रकाश पाया, ज्ञान प्राप्त किया, उसी बुद्ध का फिर उस अन्धकार में क्यों धकेला जा रहा है? बुद्ध और बुद्ध धर्म की इस प्रकार की व्याख्याएं सही अर्थों में अवांछित, अकारण एवं अनावश्यक हैं और वे इस महान धर्म को हानि पहुंचाने वाली ही हैं। इस विषय में डॉ. अम्बेदकर पर लिखते हुए किशोरी लाल ने अपनी पुस्तक युग प्रवर्तक डॉ. भीमराव अम्बेदकर विचारधारा, प्रासंगिकता एवं प्रभाव में लिखा है, '23 सितम्बर, 1956 को डॉ. अम्बेदकर ने एक प्रैस विज्ञप्ति में घोषणा की कि 14 अक्तूबर, 1956 को नागपुर में नौ से ग्यारह बजे पूर्वाह्न के मध्य धर्म परिवर्तन कर बौद्ध धर्म ग्रहण करेंगे। निश्चित तिथि को पचासी वर्षीय महाथेरा चंद्रमणि और उनके साथ चार अन्य शिक्षकों ने उन्हें पाली भाषा में दीक्षा दी'। दीक्षा के उपरान्त देवप्रिय वलिसिन्हा ने उन्हें बुद्ध की प्रतिमा भेंट की। इस अवसर पर डॉ. अम्बेदकर ने घोषणा की, 'पुराने धर्म, जो कि असमानता और उत्पीड़न पर आधारित है, को त्याग कर आज मेरा पुनर्जन्म हुआ है। मेरा अवतार दर्शन पर कोई विश्वास नहीं है और यह कहना गलत और शरारतपूर्ण है कि बुद्ध, विष्णु का अवतार थे। अब मैं हिन्दू देवी-देवताओं का उपासक नहीं हूं। मैं बुद्ध द्वारा बताये गए अष्टमार्ग की पालना करूंगा। बौद्ध धर्म एक सच्चा धर्म है और मैं बुद्ध के तीन सिद्धांतों प्रज्ञा, सही रास्ता और करुणा का पालन करूंगा तथा मेरा जीवन इन तीन सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित होगा।' ■

संदर्भः-

- लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया -डा. ग्रियर्सन।
- मनु के भारत में शूद्र-श्मसुल - बुक्स फॉर द चेंज, नई दिल्ली।
- भारतीय इतिहास के कुछ विषय भाग-1, एन.सी.ई.आर.टी,नई दिल्ली, 2007
- हिमालय के यायावर - पद्मश्री डा. श्याम सिंह शशि।
- हिस्ट्री एण्ड रिलिज़न्स आफ लाहुल - तोबदन।
- संविधान के सामाजिक अन्याय - ल.च. ढिस्सा।
- ए डिस्क्रिप्टिव ग्रामर एण्ड वोकेब्लरी आफ चिनाली - डॉ. डी. डी. शर्मा
- युग प्रवर्तक डॉ. भीमराव अम्बेडकर विचारधारा, प्रासंगिता एवं प्रभाव - किशोरी लाल-कृष्णा प्रकाशना- कांगड़ा।
- श्री मद्भगवद्गीता यथारूप द्वारा श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद, हिन्दी भाषान्तकार - राजीव गुप्ता।
- समकालीन नई दुनियां, मार्च, 2016, नई दिल्ली।
- द इण्डियन एक्सप्रेस, चण्डीगढ़ और 10, 31 मई, 2016।
- प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था और भाषा - राजू रंजन प्रसाद, जन विकल्प पटना, जनवरी, 2007।
- लाहौल क्षेत्र की पटन घाटी में प्राच्य संस्कृत के अवशेष - डा. विद्याधर गुलेरी, गिरिराज, शिमला, 24 दिसम्बर 1980।
- लाहौल स्पिति और अनुसूचित जनजातीय अल्पसंख्यक - ल.च. ढिस्सा, दलित साहित्य, नई दिल्ली, 2001।
- लाहौल की एतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचना सम्बंधित चुनौतियां - ल.च. ढिस्सा, 24 दिसम्बर 2006 को प्रस्तुत लेख।
- अस्तित्व के लिए जनजातीय दलित संघर्ष - ल.च. ढ़िस्सा, दस्तक, जमशेदपुर जनवरी- मार्च. 2004।
- हाशिये के लोग और पंचायती राज अधिनियम - ल.च. ढिस्सा, जन विकल्प, पटना, मई 2007।
- देवी हडिम्बा जाहलमा - ल.च. ढिस्सा, सोमसी, जनवरी-मार्च 2003
- लाहुल की बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन- एम. आर. ठाकुर, सोमसी, जून, अक्तूबर, 1997।
- बुद्ध धर्म और पर्यावरण - ल.च. ढिस्सा, सद्प्रयास, अक्तूबर-नवम्बर, 2009।
- शिक्षा के नाम पर षड़यंत्र - ल.च. ढिस्सा, सद्प्रयास, जुलाई-अगस्त, 2002।
- बुद्ध धर्म और शिक्षा- भारत के संदर्भ में - ल.च. ढिस्सा- लेख- 2015।
- दलित आंदोलन क्या खोया, क्या पाया - रमणिका गुप्ता, गरिमा भारती, लखनऊ।

संकीर्ण मनोवृत्ति का त्याग ही है शुद्ध धर्म

सीता राम गुप्ता

धर्म और सम्प्रदाय को लेकर कई प्रश्न मन में उठते हैं। पहला यह कि धर्म क्या है तथा दूसरा यह कि कौन-सा धर्म या धर्म का कौन-सा स्वरूप है जो उपयोगी है? क्या यह हिंदू धर्म है अथवा जैन, बौद्ध, सिख अथवा इसाई या मुस्लिम जो उपयोगी है? यदि सभी धर्म उपयोगी हैं तो फिर इन विभिन्न धर्मों का औचित्य ही क्या है? तो फिर क्यों न जाति प्रथा के उन्मूलन की तरह धर्म प्रथा का भी उन्मूलन कर दिया जाए? जातिमुक्त समाज की तरह धर्ममुक्त समाज की स्थापना कर दी जाए? लेकिन नहीं। जब धर्म शब्द का अस्तित्व है तो उसका महत्त्व भी होना ही चाहिए। धर्म को व्यक्ति, समाज तथा राजनीति किसी से अलग नहीं किया जा सकता। 'इकबाल' कहते हैं।

जलाले-पादशाही हो कि जम्हूरी तमाशा हो,
जुदा हो दीं सियासत से तो रह जाती है चंगेज़ी।

धर्म वास्तव में स्वभाव को कहते हैं। हर व्यक्ति का अपना स्वभाव होता है। वस्तुओं का भी अपना-अपना स्वभाव होता है। हम कहते हैं कि पानी का यह धर्म है तथा अग्नि का धर्म पानी के धर्म के विपरीत होता है। धातुओं का यह धर्म है। जब स्वभाव ही धर्म है तो हर व्यक्ति का अपना अलग धर्म हुआ। संत का स्वभाव हुआ परोपकार तथा दुष्ट का परपीड़न। या कह सकते हैं कि परोपकारी संत होता है और परपीड़क दुष्ट। हिंदू धर्म अच्छा है या इसाई धर्म अच्छा है या सत्य अच्छा है या असत्य अच्छा है ये सब समय-सापेक्ष तथा स्थान-सापेक्ष स्थितियाँ हैं। मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

जिस व्यक्ति के स्वभाव में इन दस लक्षणों का समावेश होगा, वह व्यक्ति धर्म से युक्त होना ही चाहिए, चाहे वह हिंदू हो अथवा अन्य कोई। यदि संकुचित दृष्टि से ऊपर उठ कर देखें तो पाते हैं कि उपरोक्त दस लक्षण ही नहीं अपितु जितने भी सकारात्मक गुण हैं उनका समुच्चय ही धर्म है। यदि हम धर्म को कुछ विशेष लक्षणों या गुणों तक सीमित कर देते हैं तो ये हमारी संकीर्णता है। संकीर्ण मनोवृत्ति का त्याग ही महान धर्म है। जैन धर्म जब अनेकांतवाद को स्वीकार करता है तभी वह सच्चे अर्थों में महान धर्म है। महावीर स्वामी की पूजा महान जैन धर्म नहीं है। महावीर स्वामी के गुणों को आत्मसात करना महान धर्म है।

धर्म सार्वजनीन होता है। यदि वह सार्वजनीन नहीं है तो सम्प्रदाय है। आज विश्व में कोई भी सार्वजनीन धर्म नहीं है अर्थात् ऐसा कोई धर्म नहीं है जो सबके लिए हो और जिसे सब अपना सकें। आज जितने भी तथाकथित धर्म हैं वे सब सम्प्रदाय मात्र हैं। हमारा धर्म या मत श्रेष्ठ है, हमारा आराध्य श्रेष्ठ है बाकी सब निकृष्ट हैं यही सोच अधर्म है तथा यहीं से साम्प्रदायिकता का प्रारंभ होता है। स्यादवाद या अनेकांतवाद से विरत होना धर्म से विरत होना है। आज संसार के विभिन्न भागों में व्याप्त वैमनस्य और धार्मिक उन्माद सिद्ध कर देता है कि संसार में कोई भी शुद्ध धर्म नहीं है या शुद्ध धर्म के अनुयायी नहीं हैं। यह आध्यात्मिक जड़ता की स्थिति है। इस आध्यात्मिक जड़ता की स्थिति से मुक्त होना ही धर्म है। 'फिराक़' गोरखपुरी ने तभी तो कहा है;

मज़हब कोई लौटा ले और उसकी जगह दे दे,
तहज़ीब सलीके की इन्सान करीने के।

धर्म के पक्ष होते हैं आंतरिक और बाह्य। धर्म का आंतरिक पक्ष होता है उदात्त मूल्य या दार्शनिक तत्त्व। धर्म के बाह्य पक्ष में होते हैं, प्रतीक या पौराणिक तत्त्व और क्रियाविधान या आनुष्ठानिक तत्त्व। मूल्य तो सभी धर्मों में प्रायः समान होते हैं, लेकिन प्रतीकों और क्रियाविधान में भेद होता है। हम मूल्यों को भूलकर प्रतीकों और कर्मकाण्डों से चिपके हुए हैं। प्रतीकों और कर्मकाण्डों द्वारा हम अपने अहम् का पोषण करने में लगे रहते हैं। यही जड़ता है।धार्मिक असहिष्णुता, धार्मिक उन्माद तथा धर्मांधता ही शुद्ध धर्म के विकास अर्थात् जागृति में बाधक हैं।

जब व्यक्ति शुद्ध धर्म में प्रवृत्त हो जाता है तो करुणा और मैत्री स्वाभाविक रूप से उपजती है। आप ने यह कथा तो सुनी ही होगी।

एक महात्मा नदी में स्नान कर रहे थे। एक बिच्छू नदी में बहता हुआ जा रहा था तो महात्मा ने उसे अपनी हथेली पर उठा लिया। उठाते ही बिच्छू ने हथेली पर डंक मारा। महात्मा पीड़ा से कराह उठे और हथेली को झटका लगने से बिच्छू पुनः पानी में जा गिरा। महात्मा ने उसे फिर अपनी हथेली पर उठा लिया और बिच्छु ने फिर डंक मारा। जब बार-बार यही क्रिया दोहराई जा रही थी तो एक शिष्य ने पूछा कि महात्मा जी आप बार-बार पीड़ा सहकर भी इस दुष्ट जीव को बचाने के लिए क्यों कृतसंकल्प हैं? महात्मा ने कहा, देखो वत्स इसका स्वभाव या धर्म डंक मारना है और जब यह अपना स्वभाव नहीं त्यागता तो मैं जीव को बचाने का अपना धर्म कैसे त्याग दूँ? सबका अपना-अपना धर्म होता है लेकिन वह शुद्ध धर्म नहीं। यहाँ कथा में वर्णित महात्मा का धर्म ही शुद्ध धर्म है।

धर्म जगाता है अर्थात् होश में लाता है, अतः धर्म जागरण का माध्यम है जागरण धर्म का नहीं अपितु स्वयं का होता है। तिरुवल्लुवर भी यही कहते हैं कि मन को निर्मल रखना ही धर्म है तो यहां जागरण का अर्थ हुआ स्वयं को जानना, मन द्वारा मन के स्रोत का अन्वेषण करना। स्वयं को जानना, बेहोशी का टूटना ही धर्म है। ये दोहा देखियेः

राग सदृश ना रोग है द्वेष सदृश ना दोष,
मोह सदृश ना मूढ़ता धर्म सदृश ना होश।

कुछ लोग धर्म को लोक-परलोक से जोड़ते हैं लेकिन जब तक शरीर है तब तक धर्म है। शरीर के बिना धर्म कैसा? शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। शरीर के बिना धर्म की साधना असंभव है। कोई भी विचार जो इस शरीर को जीते जी स्वस्थ रखे धर्म है और जो स्वास्थ्य में बाधक हो अधर्म है। शरीर ही जागरण का माध्यम है और ध्येय भी। धर्म तो नीति-निर्देशक तत्त्व है। मन में स्वस्थ-सकारात्मक, आशावादी विचारों का निरंतर प्रवाह ही धर्म है और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। धर्म माध्यम है हमारी उन्नति का तथा अन्य सभी साधन धर्म के माध्यम हैं। ■

ए.डी.-106-सी,पीतमपुरा,
दिल्ली- 110034

भीम प्रेयसी हिड़िम्बा

पाण्डवों की वारणावत यात्रा और विदुर का गुप्त सन्देश

तेज राम नेगी

गतांक से आगे-

तन मन की द्विविध भावनाओं से ग्रसित कौरव सम्राट धृतराष्ट्र एवं उनके आज्ञाकारी कूटनीतिज्ञ मन्त्री 'कणिक' की गूढ़ मन्त्रणाओं के परिणाम स्वरूप पाँचों भाई पाण्डवों तथा उनकी माता कुन्ती को हस्तिनापुर से दूर दराज़ के वन्यप्रान्त क्षेत्र 'वारणावत' की ओर अस्थाई प्रवास के लिए विशेष प्रोत्साहन के साथ प्रेरित कर के भेज दिया गया।

दुर्योधन भीमसेन की असीम शक्ति और अर्जुन के शस्त्र ज्ञान तथा विलक्षण धनुर्विद्या से अति भयभीत था। जब तब उसका कलेजा जलता रहता था। उसने कर्ण और शकुनि से मिलकर पाण्डवों को मारने के बहुत उपाय किए, परन्तु पाण्डव सबसे बचते गए। विदुर की सलाह से उन्होंने यह बात किसी पर प्रकट भी नहीं की।

पाण्डवों को वारणावत जाने की आज्ञा दे दी, तब दुरात्मा दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने मन्त्री पुरोचन को एकान्त में बुलाया और उसका दाहिना हाथ पकड़कर कहा, भाई पुरोचन! इस पृथ्वी को भोगने का जैसा मेरा अधिकार है, वैसा ही तुम्हारा भी है। तुम्हारे सिवा मेरा ऐसा और कोई विश्वासपात्र और सहायक नहीं है, जिसके साथ मैं इतनी गुप्त सलाह कर सकूं। मैं तुम्हें यह काम सौंपता हूं कि मेरे शत्रुओं की जड़ उखाड़ फैंको। होशियारी से काम करना, किसी को मालूम न हो। पिता जी की आज्ञानुसार पाण्डव कुछ दिन तक वारणावत में रहेंगे। तुम पहले ही वहां चले जाओ। वहां नगर के किनारे पर सन, सर्जरस और लकड़ी आदि से ऐसा भवन बनवाओ जो आग से भड़क उठे। उसकी दीवारों पर घी, तेल, चर्बी और लाख मिली हुई मिट्टी का लेप करा देना। पाण्डवों को परीक्षा करने पर भी इस बात का पता न चले। उसी में कुन्ती, पाण्डव और उनके मित्रों को रखना। वहां दिव्य आसन, वाहन और शय्या सजा देना। फिर वे विश्वासपूर्वक निश्चिन्त होकर सो जाएं तो दरवाज़े पर आग लगा देना। इस प्रकार जब वे अपने रहने के घर में ही जल जाएंगे तो हमारी निन्दा भी न होगी'। पुरोचन ने वैसा करने की प्रतिज्ञा की और एक खच्चर जुती हुई तेज़ गाड़ी से वहां को चल दिया। वहां जाकर उसने दुर्योधन की आज्ञानुसार महल तैयार कराया।

समय आने पर पाण्डवों ने यात्रा के लिए शीघ्रगामी और श्रेष्ठ घोड़ों को रथ में जुड़वाया। उन लोगों ने बड़े दीन-भाव से बड़े-बूढों के चरणों का स्पर्श किया, छोटों का आलिंगन किया और फिर यात्रा की। उस समय कुरुवंश के बहुत से बड़े-बूढ़े बुद्धिमान् विदुर और सारी प्रजा युधिष्ठिर के पीछे-पीछे चलने लगी। पाण्डवों को उदास देखकर निर्भय ब्राह्मणों ने आपस में कहा, 'राजा धृतराष्ट्र की बुद्धि मन्द हो गई है। तभी तो वे अपने लड़कों का पक्षपात करते हैं, उनकी धर्मदृष्टि लुप्त हो रही है। पाण्डवों ने तो किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है। अपने पिता का ही राज्य उन्हें प्राप्त हो रहा है, फिर धृतराष्ट्र इसे भी क्यों नहीं सहते। पता नहीं, धर्मात्मा भीष्म यह अन्याय कैसे सहन कर रहे हैं। हम लोग यह सब नहीं चाहते। सह भी नहीं सकते। हम सब अब हस्तिनापुर को छोड़कर वहीं चले जाएंगे जहां राजा युधिष्ठिर रहेंगे'। पुरवासियों की बात सुन तथा उनका दुःख जानकर युधिष्ठिर ने कहा, 'पुरवासियो! राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता, परम मान्य और गुरु हैं। वे जो कुछ कहेंगे वह हम पूरे आदर से करेंगे। यह हमारी प्रतिज्ञा है। यदि आप लोग हमारे हितैषी और मित्र हैं तो हमारा अभिनन्दन कीजिए और आशीर्वादपूर्वक हमें विदा करके लौट जाइए। जब हमारे काम में कोई अड़चन पड़ेगी, तब आप लोग हमारा प्रिय और हित कीजिएगा'। युधिष्ठिर की धर्मसगंत बात सुनकर सभी पुरवासी आशीर्वाद देते हुए उनकी प्रदक्षिणा करके नगर में लौट गए।

सबके लौट जाने पर अनेक भाषाओं के ज्ञाता विदुर जी ने युधिष्ठिर से सांकेतिक भाषा में कहा, 'नीतिज्ञ पुरुष को शत्रु का मनोभाव समझकर उससे अपनी रक्षा करनी चाहिए। एक ऐसा अस्त्र है जो लोहे का तो नहीं परन्तु शरीर को नष्ट कर सकता है। यदि शत्रु के इस दांव को कोई समझ ले तो वह मृत्यु से बच सकता है। आग घास और सारे जंगल को जला डालती है। परन्तु बिल में रहने वाले जीव उससे अपनी रक्षा कर लेते हैं यही जीवित रहने का उपाय है। अन्धे को रास्ता और दिशाओं का ज्ञान नहीं होता। बिना धैर्य के समझदारी नहीं आती। मेरी बात को भली-भान्ति समझ लो। शत्रुओं के दिए हुए बिना लोहे के हथियार को जो स्वीकार करता है वह 'साही (मिट्टी कुरेदने वाला एक जंगली जानवर जिसके शरीर में बुनने वाली सलाइयों की भान्ति पंखनुमा तीर होते हैं।) के बिल में घुसकर आग से बच जाता है। घूमने-फिरने से रास्ते का ज्ञान हो जाता है। नक्षत्रों से दिशा का पता लग जाता है। जिसकी पाँचों इन्द्रियां वश में हैं शत्रु उसकी कुछ भी हानि नहीं कर सकते। विदुर का संकेत सुन कर युधिष्ठिर ने कहा, 'मैंने आपकी बात भली-भान्ति समझ ली'। विदुर हस्तिनापुर लौट आए। यह घटना फाल्गुन शुक्ल अष्टमी, रोहिणी नक्षत्र की है।

पाण्डवों द्वारा लाक्षा-गृह को आग लगाकर सुरंग मार्ग से प्रस्थान-

पाण्डवों के शुभागमन का समाचार सुनकर वारणावत के नागरिक शास्त्र विधि के अनुसार मंगलमयी वस्तुओं की भेंट लेकर प्रसन्नता और उत्साह के साथ सवारियों पर चढ़कर उनकी अगवानी के लिए आए। उनके जय-जयकार और मंगल ध्वनि से चारों दिशाएं गूंज उठीं। पुरवासियों के बीच में युधिष्ठिर ऐसे जान पड़ते थे मानो स्वयं देवराज इन्द्र हों। स्वागत करने वालों का अभिनन्दन करके माता कुन्ती के साथ पाण्डवों ने वारणावत नगर में प्रवेश किया। उन्होंने पहले वेदपाठी, कर्मकाण्डी ब्राह्मणों से मिलकर फिर क्रमशः नगर के अधिकारी योद्धा, वैश्य और शूद्रों से भेंट की। पुरोचन ने नियत वास स्थान पर आदर के साथ उन्हें ठहराया और भोजन, आसन आदि सामग्रियों से उन्हें सन्तुष्ट करने की चेष्टा की। पाण्डव लोग सुखपूर्वक वहां रहने लगे। पुरवासियों की भीड़ प्रायः लगी ही रहती। दस दिन बीत जाने पर पुरोचन ने पाण्डवों से उस सुन्दर नाम वाले, किन्तु अमंगल भवन की चर्चा की। उसकी प्रेरणा से पाण्डव सामग्रियों के साथ जाकर वहां रहने लगे।

धर्मराज युधिष्ठिर ने उस घर को चारों ओर से देखकर भीमसेन से कहा, 'भाई भीम! देखते हो न इस घर का एक-एक कोना आग भड़काने वाली सामग्रियों से बना है। घी, लाख और चर्बी की मिश्रित गन्ध से यही प्रमाणित होता है। शत्रु के कारीगरों ने बड़ी चतुराई से सन, सर्जरस, मूंज, घास, बांस आदि को घी से तर करके इसका निर्माण किया है। निश्चय ही पुरोचन का विचार है कि जब हम लोग इसमें बेखटके रहने लगें तब वह आग लगाकर इसे जला दें। विदुर ने पहले ही यह बात ताड़ ली थी। तभी तो उन्होंने हमें स्नेहवश इसकी सूचना दे दी'। भीमसेन ने कहा 'भाई जी! यदि ऐसी बात है तो हम लोग अपने पहले ही स्थान पर क्यों न लौट चलें'। युधिष्ठिर ने कहा, 'भैया भीम! हमें बड़ी सावधानी के साथ अपनी जानकारी छिपाकर यहीं रहना चाहिए। हमारे चेहरे या रंग-ढंग से किसी को सन्देह न हो। हम लोगों को यहां से निकलने का उपाय ढूंढ लेना चाहिए। यदि हमारे भाव से पुरोचन को पता चल गया तो वह बलपूर्वक भी हमें जला सकता है। उसे लोकनिन्दा अथवा अधर्म की परवाह नहीं है। यदि हम मर ही गए तो फिर पितामाह भीष्म तथा दूसरे लोग कौरवों पर किस लिए रुष्ट होंगे या उन्हें रुष्ट करेंगे। उस समय का क्रोध भी तो व्यर्थ ही जाएगा। यदि हम डर कर यहां से भागेंगे तो दुर्योधन अपने गुप्तचरों से पता लगाकर हमें मरवा डालेगा। इस समय वह अधिकारी है। उसके पास सहायक और खज़ाना है। हमारे पास तीनों ही बातें नहीं है। आओ हम लोग यहां रहकर वन में खूब घूमें-फिरें और रास्तों का पता लगा रखें। सुरक्षित सुरंग बन जाने पर हम यहां से भाग निकलें और किसी को कानों कान इस बात की खबर न हो कि पाण्डव जीते बच गए। भीमसेन ने बड़े भाई की बात मान ली।

एक सुरंग खोदने वाला विदुर का बड़ा विश्वास पात्र था। उसने पाण्डवों के साथ आकर कहा, 'मैं खुदाई के काम में बड़ा निपुण हूँ, विदुर जी की आज्ञा से आपके पास आया हूं। आप मुझ पर विश्वास कीजिए। विदुर ने संकेत के तौर पर मुझे बतलाया है कि चलते समय मैंने युधिष्ठिर से म्लेच्छ-भाषा में कुछ कहा था और उन्होंने मुझे आपकी बात भली-भान्ति समझा दी थी। पुरोचन जल्दी ही आग लगाने वाला है। मैं आपकी क्या सेवा करूं'। युधिष्ठिर ने कहा, 'भैया! मैं तुम पर पूरा विश्वास करता हूं। हमारे जैसे हितचिन्तक विदुर हैं, वैसे ही तुम भी हो। हमें अपना ही समझो और जैसे वे हमारी रक्षा करते हैं वैसे ही तुम भी करो। इस आग के भय से तुम हमें बचा लो। इस घर में चारों ओर ऊंची दीवारें हैं, एक ही दरवाज़ा है'। तब सुरंग खोदने वाला कारीगर युधिष्ठिर को आश्वासन देकर खाई की सफाई करने के बहाने अपने काम पर डट गया। उसने उस घर के बीचों-बीच एक बड़ी-सुरंग बनाई और ज़मीन के बराबर ही किवाड़ लगा दिए। पुरोचन उस महल के दरवाज़े पर ही सर्वदा रहता था। कहीं वह आकर देख न ले, इसलिए सुरंग का मुंह बिलकुल बंद रखा गया।

पाण्डव अपने साथ शस्त्र रखकर बड़ी सावधानी से उस महल में रात बिताते थे। दिनभर शिकार खेलने के बहाने जंगल में घूमा करते। विश्वास न होने पर भी वे ऐसी ही चेष्टा करते मानो पूरे विश्वासी हों। उस खोदने वाले कारीगर के अतिरिक्त पाण्डवों की इस स्थिति का पता किसी को नहीं था।

पुरोचन ने देखा एक वर्ष के लगभग हो गया, पाण्डव इसमें बड़े विश्वास से रह रहे हैं। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी प्रसन्नता देखकर युधिष्ठिर ने भाइयों से कहा, 'पापी पुरोचन समझ रहा है कि ये ठग लिए गए हैं। ये भुलावे में आ गए हैं। अतः अब यहां से निकल चलना चाहिए। शस्त्रागार और पुरोचन को भी जलाकर अलक्षित रूप से भाग निकलना चाहिए।

एक दिन कुन्ती ने दान देने के लिए ब्राह्मण-भोजन कराया। बहुत सी स्त्रियां भी आई थीं। जब सब खा पीकर चले गए तब संयोगवश एक भील की स्त्री अपने पाँच पुत्रों के साथ वहां भोजन मांगने के लिए आई। वे सब शराब पीकर मस्त थे, इसलिए बेहोश होकर लाक्षा भवन में ही सो गए। सब लोग सो चुके थे, आंधी चल रही थी, भयंकर अन्धकार था। भीमसेन उस स्थान पर पहुंचे जहां पुरोचन सो रहा था। भीमसेन ने पहले उस मकान के दरवाज़े पर आग लगाई और फिर चारों तरफ आग भड़का दी। कुछ समय में ही विकराल लपटें उठने लगी। पाँचों भाई अपनी माता के साथ सुरंग में घुस चले। जब आग की असह्य गर्मी और उत्कट उजाला चारों ओर फैल गया और इमारत के चटचटाने तथा गिरने से धांय-धांय ध्वनि होने

लगी तब पुरवासी जगकर वहां दौड़े आए। उस महल की भयंकर दुर्दशा देख कर सब कहने लगे कि 'दुरात्मा दुर्योधन की प्रेरणा से पुरोचन ने यह जाल रचा होगा। हो न हो यह उसी की करतूत है। धृतराष्ट्र की इस स्वार्थपरता को धिक्कार है। उन्होंने सीधे और सच्चे पाण्डवों को जलवाकर मार डाला। पुरोचन को भी अच्छा फल मिला। वह निर्दयी भी इसी में जलकर राख का ढेर हो गया'। इस तरह वारणावत के नागरिक रोते हुए रातभर उस महल को घेरे रहे।

पाण्डव माता कुन्ती को साथ लिए सुरंग से बाहर एक वन में निकले। सब चाहते थे कि यहां से जल्दी भाग चलें। परन्तु नींद और डर के मारे सब लाचार थे। माता कुन्ती के कारण फुर्ती से चलना असम्भव हो रहा था। तब भीमसेन माता को कन्धे पर और नकुल-सहदेव को गोद में बिठाकर युधिष्ठिर और अर्जुन को दोनों हाथों का सहारा देते हुए जल्दी-जल्दी वहां से निकल पड़े। उस समय भीमसेन बड़ी तेज़ गति से चलकर गंगा जी के तट पर पहुंच गए।

पाण्डवों का गंगा पार होना, कौरवों के द्वारा उनकी अन्त्येष्टि क्रिया और वन में भीमसेन का विषाद

उसी समय विदुर का भेजा हुआ एक विश्वास पात्र पाण्डवों के पास आया। उसने पाण्डवों को विदुर का बतलाया हुआ संदेश सुनाया और कहा, 'मैं विदुर जी का विश्वास पात्र सेवक हूं। मैं अपने कर्त्तव्य को ठीक-ठाक समझता हूं। आप विदुर जी के कथनानुसार शत्रुओं पर अवश्य विजय प्राप्त करेंगे। यह नौका तैयार है, आप गंगा पार हो जाइए'। जब पाण्डव अपनी माता के साथ नाव पर बैठ गए तब उसने कहा, 'विदुर जी ने बड़े प्रेम से कहा है कि आप लोग निर्विघ्न अपने मार्ग पर बढ़ते चलें। घबराएं बिल्कुल नहीं'। उसने गंगा पार पहुंचाकर पाण्डवों का जय-जयकार किया और उनका कुशल सन्देश लेकर विदुर जी के पास चला गया तथा पाण्डव भी गंगा पार होकर छिपते हुए बड़े वेग से आगे बढ़ने लगे।

इधर वारणावत में पूरी रात बीत जाने पर सारे पुरवासी पाण्डवों को देखने के लिए आए। आग बुझाते-बुझाते उन लोगों को मालूम हुआ कि यह महल लाख का बना है और मन्त्री पुरोचन भी इसी में जल गया है। उन्होंने निश्चय किया कि पापी दुर्योधन का ही यह षड्यन्त्र है। अवश्य ही यह बात धृतराष्ट्र की जानकारी में हुई है। भीष्म, विदुर और दूसरे कौरव भी धर्म का पक्ष नहीं ले रहे हैं। आओ हम लोग धृतराष्ट्र के पास सन्देश भेज दें कि तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया। अब तुम्हारी करतूत से पाण्डव जलकर मर गए। जब सब लोग आग हटाकर देखने लगे तो अपने पाँचों पुत्रों के साथ मरी भीलनी मिली। उन लोगों ने उन्हें पाण्डव और कुन्ती समझा। सुरंग खोदने वाले मनुष्य ने घर साफ करते-करते राख से सुरंग पाट दी। इसलिए किसी को भी उस का पता न चल सका। पुरवासियों ने यह सन्देश धृतराष्ट्र के पास हस्तिनापुर भेज दिया।

यह अशुभ समाचार सुनकर धृतराष्ट्र ने बाहर से बहुत दुःख प्रकट किया। वे विलाप करने लगे कि 'हाय-हाय! पाण्डव और उनकी माता के मरने से मुझे पाण्डु की मृत्यु से भी बढ़कर दुःख हो रहा है'। उन्होंने कौरवों को आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र से शीघ्र वारणावत में जाकर पाण्डवों और उनकी माता का विधिपूर्वक अन्त्येष्टि-संस्कार करो। पुरोचन के भाई-बन्धु भी वहां जाकर उसका क्रियाकर्म करें। पाण्डवों का कर्म इस प्रकार खूब खर्च करके किया जाए जिससे उन्हें सद्गति प्राप्त हो। सब जाति-भाइयों और धृतराष्ट्र ने विलाप करके पाण्डवों को श्रद्धांजलि दी। पुरवासियों ने उनकी दुर्घटना पर बड़ा शोक प्रकट किया। विदुर ने सब हाल मालूम होने पर भी थोड़ी बहुत सहानुभूति प्रकट की।

इधर पाण्डव नाव से उतरने के बाद दक्षिण दिशा की ओर बढ़ने लगे। उस समय नींद के मारे सबकी आँखें बंद हो रही थी। सभी थके और प्यासे थे। घना जंगल था। दिशाओं का पता नहीं चलता था। यद्यपि पुरोचन जल गया था फिर भी उन्हें छिप कर ही जाना था। इसलिए युधिष्ठिर की आज्ञा से भीमसेन ने फिर सबको पूर्ववत् लाद लिया और तेजी के साथ चलने लगे। भीमसेन इतने भीषण वेग से चल रहे थे कि सारा वन कांपता हुआ सा जान पड़ता था। इस समय पाण्डव प्यास, थकावट और नींद से बड़े बेचैन हो रहे थे। उन्हें आगे बढ़ना कठिन हो रहा था। वे ऐसे घोर वन में जा पहुंचे जहां पानी का कहीं पता न था। इस समय कुन्ती ने अत्यन्त तृषातुर होकर जल की इच्छा प्रकट की। तब भीमसेन ने उन सबको एक वट-वृक्ष के नीचे उतारकर कहा, 'तुम लोग थोड़ी देर यहीं विश्राम करो। मैं जल लाने के लिए जा रहा हूं। निश्चय ही यहां थोड़ी दूरी पर कोई बड़ा जलाशय है। तभी तो जल में रहने वाले सारस पक्षियों की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही है'। युधिष्ठिर की आज्ञा मिलने पर सारस पक्षियों की ध्वनि के आधार से भीमसेन तालाब के पास जा पहुंचे। वहां उन्होंने जल पीया, स्नान किया और उन लोगों के लिए अपने दुपट्टे में पानी भर कर ले आए।

वट-वृक्ष के नीचे पहुंचकर भीमसेन ने देखा कि माता और सब भाई सो गए हैं। वे दुःख और शोक से भरकर उन्हें बिना जगाए ही मन ही मन सोचने लगे कि मेरे लिए इससे बढ़कर कष्ट की बात और क्या होगी कि मैं आज अपने उन भाइयों को जिन्हें बहुमूल्य सुकोमल सेज पर भी नींद नहीं आती थी, आज उन्हें खुली ज़मीन पर सोते देख रहा हूं। मेरी माता वासुदेव की बहन और कुन्तीराज की पुत्री हैं। वे विचित्रवीर्य जैसे सुखी पुरुष की पुत्रवधू, महात्मा पाण्डु की पत्नी और हमारे जैसे पुत्रों की माता हैं। फिर भी खुली धरती पर सो रही हैं। मेरे लिए इससे बढ़कर और दुःख की बात क्या होगी कि जिन्हें अपने धर्मपालन के फलस्वरूप तीनों लोकों का शासक होना चाहिए, वे युधिष्ठिर थककर साधारण पुरुष की भांति ज़मीन पर लेटे हुए हैं। आज मैं अपनी आँखों से वर्षा कालीन मेघ

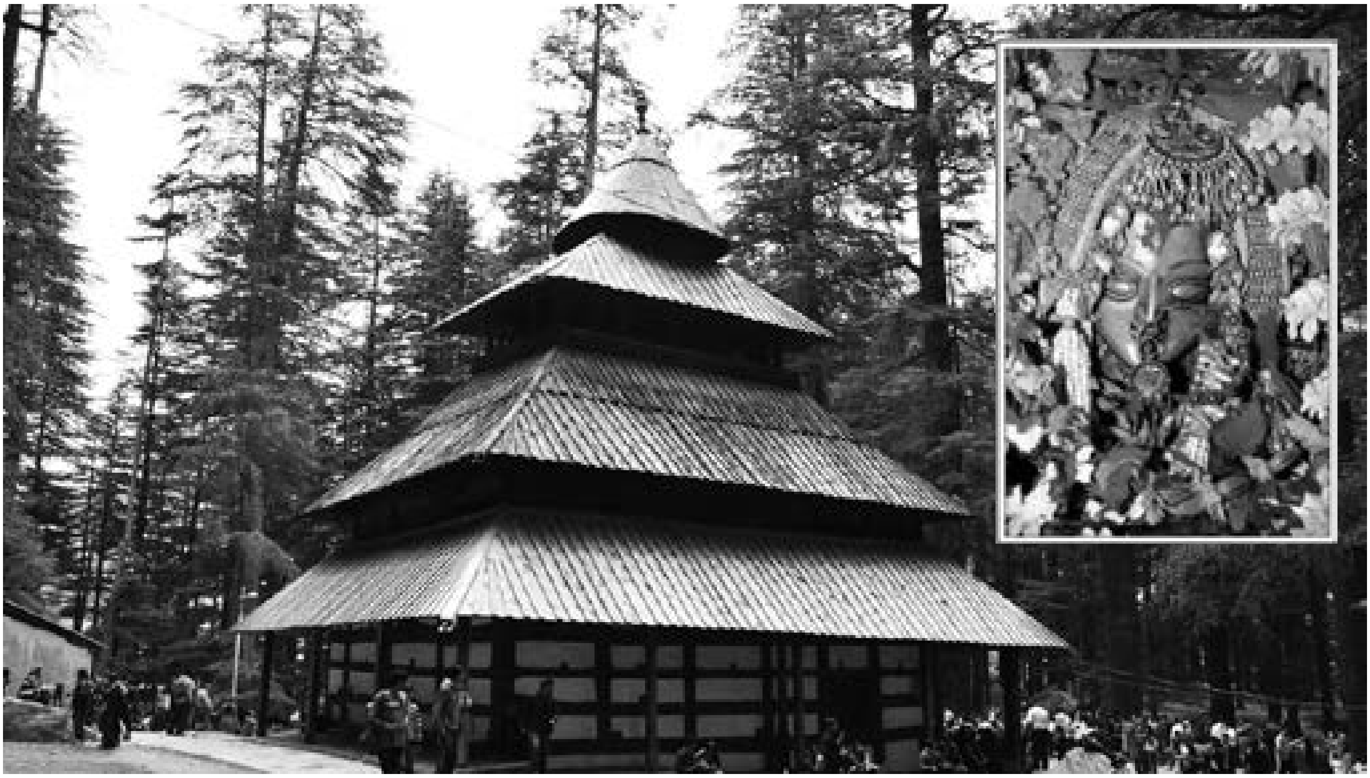

के समान श्याम सुन्दर नररत्न अर्जुन और देवताओं में अश्विनी कुमारों के समान रूप सम्पत्ति में सबसे बढ़े-चढ़े नकुल और सहदेव को आश्रयहीन की तरह वृक्ष के नीचे नींद लेते देख रहा हूं। दुरात्मा दुर्योधन ने हम लोगों को घर से निकाल दिया और जलाने का प्रयत्न किया। किन्तु भाग्यवश हम लोग बच गए। आज हम वृक्ष के नीचे हैं। कहां जाएंगे, क्या भोगेंगे, इसका पता नहीं। पापी दुर्योधन, सुखी हो ले। युधिष्ठिर मुझे तेरे वध के लिए आज्ञा नहीं देते। नहीं तो मैं आज तुझे मित्रों और कुटुम्बियों के साथ यमराज के हवाले कर देता। जब युधिष्ठिर तुझ पर क्रोध नहीं करते तो मैं क्या करूं। भीमसेन क्रोध से उतावले हो रहे थे। सांस लम्बी चल रही थी और वे हाथ पीस रहे थे। अपने भाइयों को निश्चिन्त सोते देखकर वे फिर सोचने लगे कि यहां से थोड़ी ही दूरी पर वारणावत नगर है। यहां तो बड़ी सावधानी से जागना चाहिए था, फिर भी ये सो रहे हैं। अच्छा, मैं ही जागूंगा। हां, तो जल का क्या होगा? अभी थके हैं। जब जागेंगे तब पी लेंगे। यह सोचकर स्वयं भीमसेन जागकर पहरा देने लगे।

हिडिम्बासुर का वध

जिस वन में युधिष्ठिर आदि सो रहे थे, उससे थोड़ी ही दूर एक विशाल वृक्ष था। उस पर हिडिम्बासुर बैठा हुआ था। वह बड़ा क्रूर, पराक्रमी एवं मांसभक्षी था। उसके शरीर का रंग एकदम काला, आँखें पीली और आकृति बड़ी भयानक थी। दाढ़ी-मूंछ और सिर के बाल लाल थे। बड़ी-बड़ी दाढ़ों के कारण उसका मुख अत्यन्त भीषण था। उस समय उसे भूख लगी थी। मनुष्य की गन्ध पाकर उसने पाण्डवों की ओर देखा और फिर अपनी बहन हिडिम्बा से कहा, 'बहन! आज बहुत दिनों के बाद मुझे अपना प्रिय मनुष्य मांस मिलने का संयोग दिखता है। जीभ पर बार-बार पानी आ रहा है। आज मैं अपनी डाढ़ें इनके शरीर में डुबो दूंगा और ताज़ा-ताज़ा गरम खून पिऊंगा। तुम इन मनुष्यों को मारकर मेरे पास ले आओ। तब हम दोनों इन्हें खाएंगे और ताली बजा-बजा कर नाचेंगे'।

अपने भाई की आज्ञा मानकर वह राक्षसी बहुत जल्दी-जल्दी पाण्डवों के पास पहुंची। उसने जाकर देखा कि कुन्ती और युधिष्ठिर आदि तो सो रहे हैं, लेकिन महाबली भीमसेन जाग रहे हैं। भीमसेन के विशाल शरीर और परम सुन्दर रूप को देख कर हिडिम्बा का मन बदल गया और वह सोचने लगी- 'इनका वर्ण श्याम है, बाहें लम्बी हैं, सिंह के समान कंधे हैं, शंख की तरह गर्दन और कमल से नेत्र हैं। रोम-रोम से छबि छिटक रही है। अवश्य ही ये मेरे पति होने योग्य हैं। मैं अपने भाई की क्रूरतापूर्ण बात नहीं मानूंगी। क्योंकि भ्रातृप्रेम से बढ़कर पति प्रेम है। यदि इन्हें मार कर खाया जाए तो थोड़ी देर तक हम दोनों तृप्त रह सकते हैं। परन्तु इनको जीवित रखकर तो में बहुत वर्षों तक सुख भोग सकती हूं'।

यह सोचकर हिडिम्बा ने मानुषी स्त्री का रूप धारण किया और धीरे-धीरे भीमसेन के पास गई। दिव्य गहने और वस्त्रों से विभूषित सुन्दरी हिडिम्बा ने कुछ संकोच के साथ मुस्कुराते हुए पूछा, 'पुरुष शिरोमणे! आप कौन हैं और कहां से आए हैं? ये सोए हुए पुरुष कौन हैं? यह बड़ी-बूढ़ी स्त्री कौन है? आप लोग इस घोर जंगल में अपने घर की तरह निडर होकर सो रहे हैं। इन्हें पता नहीं कि इस जंगल में बड़े-बड़े राक्षस रहते हैं और हिडिम्ब राक्षस तो पास ही

है। मैं उसी की बहन हूं। आप लोगों का मांस खाने की इच्छा से ही उसने मुझे यहां भेजा है। मैं आपके देवोपन सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गई हूं। मैं आपसे शपथपूर्वक सत्य कहती हूं कि आपके अतिरिक्त और किसी को अब अपना पति नहीं बना सकती। आप धर्मज्ञ हैं जो उचित समझें वही करें। मैं आपसे प्रेम करती हूं। आप भी मुझ से प्रेम कीजिए। मैं इस नरभक्षी राक्षस से आपकी रक्षा करूंगी और हम दोनों सुख से पर्वतों की गुफा में निवास करेंगे। मैं स्वेच्छानुसार आकाश में विचरण कर सकती हूं। आप मेरे साथ अतुलनीय आनन्द का उपभोग कीजिए'। भीमसेन ने कहा, 'अरी राक्षसी! मेरी मां, बड़े भाई ओर छोटे भाई सुख से सो रहे हैं। मैं इन्हें राक्षस का भोजन बना दूं और तेरे साथ चला जाऊं, यह भला कैसे हो सकता है'। हिडिम्बा ने कहा, 'आप जैसे प्रसन्न होंगे, मैं वही करूंगी। आप इन लोगों को जगा दीजिए, मैं आपको राक्षस से बचा लूंगी'। भीमसेन बोले, 'वाह-वाह! यह खूब रही। मैं अपने सुख से सोए हुए भाइयों और मां को दुरात्मा राक्षस के भय से जगा दूं। जगत् का कोई भी मनुष्य, राक्षस अथवा गन्धर्व मेरे सामने ठहर नहीं सकता। सुन्दरी! तुम जाओ या रहो, मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है।

उधर राक्षसराज हिडिम्ब ने सोचा कि मेरी बहन को गए हुए बहुत देर हो गई। इसलिए उस वृक्ष से उतर कर वह पाण्डवों की ओर चला। उस भयंकर राक्षस को आते देखकर हिडिम्बा ने भीमसेन से कहा, 'देखिए, वह नरभक्षी राक्षस क्रोधित होकर इधर आ रहा है। आप मेरी बात मानिए। मैं स्वेच्छानुसार उड़ सकती हूं। मुझ में राक्षस बल भी है। मैं आपको और इन सबको लेकर आकाश मार्ग से उड़ कर ले जाऊंगी'। भीमसेन बोले, सुन्दरी! तू डर मत। मेरे रहते कोई राक्षस इनका बाल-बांका नहीं कर सकता। मैं तेरे सामने उसे मार डालूंगा। देख मेरी यह बांह और मेरी यह जांघ। यह क्या, कोई भी राक्षस इनसे पिस जाएगा। मुझे मनुष्य समझकर तू मेरा तिरस्कार न कर' इस तरह की बातें हो ही रही थी कि उन्हें सुनता हुआ हिडिम्ब वहां आ पहुंचा। उसने देखा कि मेरी बहन तो मनुष्यों का सा सुन्दर रूप धारण करके खूब बन-ठन कर और सज-धज कर भीमसेन को पति बनाना चाहती है। वह क्रोध से तिलमिला उठा और बड़ी-बड़ी आँखें फाड़कर कहने लगा, 'अरे हिडिम्बा! मैं इनका मांस खाना चाहता हूं और तू इसमें विघ्न डाल रही है। धिक्कार है। तूने हमारे कुल में कलंक लगा दिया। जिनके सहारे तूने ऐसी हिम्मत की है, देख मैं तेरे सहित उन्हें अभी मार डालता हूं'। यह कहकर हिडिम्ब दांत पीसता हुआ अपनी बहन और पाण्डवों की ओर झपटा।

भीमसेन ने उसे आक्रमण करते देखकर डांटते हुए कहा, 'ठहर जा मूर्ख! तू इन सोते हुए भाइयों को क्यों जगाना चाहता है? हिम्मत हो तो मेरे सामने आ। तेरे लिए मैं अकेला ही काफी हूं, तू स्त्री पर हाथ न उठा'। भीमसेन ने बलपूर्वक हंसते हुए उसका हाथ पकड़ लिया और वह उसको वहां से घसीटते हुए बहुत दूर ले गया। इसी प्रकार एक दूसरे को कसकते-कसकते तनिक और दूर चले गए और वृक्ष उखाड़-उखाड़ कर गरजते हुए लड़ने लगे। उनकी गर्जना से कुन्ती और पाण्डवों की नींद खुल गई। उन लोगों ने आँख खुलते ही देखा कि सामने परम सुन्दरी हिडिम्बा खड़ी है। उसके रूप सौन्दर्य से विस्मित होकर कुन्ती ने बड़ी मिठास के साथ धीरे-धीरे कहा, 'सुन्दरी! तुम कौन हो? यहां किस लिए और कहां से आई हो'? हिडिम्बा ने कहा, 'यह जो काला घोर जंगल है, वही मेरा और मेरे भाई हिडिम्ब का वास स्थान है। उसने मुझे तुम लोगों को मार डालने के लिए भेजा था। यहां आकर मैंने तुम्हारे परम सुन्दर पुत्र को देखा और उस पर मोहित हो गई। मैंने मन ही मन उसको पति मान लिया और उन्हें यहां से ले जाने की चेष्टा की, परन्तु वे विचलित नहीं हुए। मुझे देर करते देख मेरा भाई स्वयं यहां चला आया और उसे तुम्हारा पुत्र घसीटने हुए बहुत दूर ले गए हैं। देखो, इस समय वे दोनों गरजते हुए एक दूसरे को रगड़ रहे हैं'। हिडिम्बा की यह बात सुनते ही चारों पाण्डव उठकर खड़े हो गए और देखा कि वे दोनों एक दूसरे को परास्त करने की अभिलाषा से भिड़े हुए हैं। ■

(क्रमशः)

चन्द्रताल की विज्ञापन दरें:

आवरण (रंगीन):

बैक कवर 280x210mm	: रु 15000
भीतर कवर पृष्ठ 1 280x210mm	: रु 12000
भीतर कवर पृष्ठ 2 280x210mm	: रु 10000

अन्य (श्वेत श्याम):

पूर्ण पृष्ठ 210x280mm	: रु 5000
अर्ध पृष्ठ 140x210mm	: रु 3000
चौथाई पृष्ठ 105x140mm	: रु 1000
प्रायोजन	: रु 2500

वृद्धाश्रम एक बहस

अश्वनी बोक्टपा

चन्द्रताल एकमात्र ऐसी पत्रिका जो हमें हमारे मातृभूमि लाहुल-स्पिति के लुप्त हो रही परम्पराओं, संस्कृति एवं रीति रिवाज़ों की झलक दिखलाती है। इसीलिए तो लाहुल का प्रत्येक शख्स चन्द्रताल का बेसब्री से इंतज़ार करता है ताकि यहां की संस्कृति के उन अनछुए पहलुओं से रूबरू हो सके जिन्हें हम अतीत की गहराइयों में छोड़ आए हैं। एक लम्बे अन्तराल के बाद एक बार फिर चन्द्रताल का नया अंक (29वां) हाथ लगा। दूसरे ही पन्ने पर छपे सम्पादकीय, जिसमें वृद्धाश्रम का उल्लेख किया गया है, ने मुझे झकझोर दिया और मेरे अन्दर की बेचैनी को बाहर निकाल कर कलमबद्ध करने के लिए मजबूर कर दिया। क्योंकि जहां एक तरफ हम लुप्त हो रही परम्पराओं, संस्कृति एवं रीति-रिवाज़ों को फिर से जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं वहीं दूसरी तरफ हम अपने जीवन के सबसे अहम मानवीय ज़िम्मेदारी से दूर भाग रहे हैं। ऐसा नहीं कि मैं इस समस्या से अनभिज्ञ था लेकिन शब्द-दर-शब्द जब इसकी गहराई में उतरता गया तो इसका और भी भयावय रूप सामने आता गया।

आज यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि हमारा (लाहुल स्पिति का) समाज भी आधुनिकता रूपी कृष्ण छिद्र (Black Hole) में समाता जा रहा है। मैं यह तो नहीं कहता कि हमें आधुनिकता नहीं अपनानी चाहिए लेकिन यह महसूस हो रहा है कि आधुनिकता रूपी वाहन का वेग बहुत तीव्र है जिसके पीछे उड़ने वाली धूल हमारी परम्पराओं, संस्कृति, रीति-रिवाज़ों और नैतिक मूल्यों को ढकती जा रही है और वह दिन दूर नहीं जब यह अमूल्य धरोहर धूल की मोटी परत के नीचे कभी न मिलने वाला इतिहास बनकर दफ़न हो जाएगी।

विज्ञान की तरह आधुनिकता के भी वरदान और अभिशाप दो पहलू हैं। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम किस दृष्टिकोण के साथ चलते हैं। वृद्धाश्रम की धारणा भी कहीं न कहीं इसी बीच से उपजी है। आधुनिकता यह नहीं कहती कि नैतिक मूल्यों को भूल जाओ बल्कि हम स्वयं आधुनिकता में ऐसे लिप्त हो चुके हैं कि हमारे पास उन मूल्यों, परम्पराओं, संस्कृति एवं रीति-रिवाज़ों की तरफ ध्यान देने का वक्त ही नहीं है। हम नए की चाह में पुरानी हर वस्तु को भूल जाते हैं या अपने से दूर कर देते हैं चाहे वह रिश्ते ही क्यों न हों।

आज हम बच्चों को भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान व गणित का विषय पढ़ने के लिए अतिरिक्त धन व्यय करके ट्यूशन तक लगाते हैं, किसी अच्छे कॉलेज में दाखिला दिलाने के लिए कोचिंग दिलाते हैं। लेकिन क्या कभी हमने अपनी संस्कृति, रीति-रिवाज़ों और परम्पराओं की शिक्षा देने के लिए थोड़ा सा भी समय निकाला है? ईमानदारी से कहें तो जवाब है नहीं।

मैं इस बात से कतई सहमत नहीं हूँ कि वृद्धाश्रम की अवधारणा समय की मांग है। समय की मांग तो शिक्षा है, धन है। इनकी ग़ैर-मौजूदगी में आज के समय में आगे बढ़ना असम्भव सा लगता है लेकिन वृद्धाश्रम के मामले में ऐसा नहीं लगता। अन्य समाज में इसके प्रचलन को देखकर इसे अपनाना असंगत सा लगता है। विदेशों और महानगरों की बात अगर हम करें तो मैं यह कहना चाहता हूं कि वहां तो बहुत सी अन्य ऐसी चीजें भी प्रचलित है जिन्हें एक सभ्य समाज में घृणित माना जाता है तो क्या उनका अनुसरण करके हमें भी इनको अपना लेना चाहिए? नहीं, बल्कि आज हमें ऐसे 'सोच' की ज़रूरत है जो यह फैसला कर सके कि प्रचलित चीज़ें हमारे लिए या हमारे समाज के लिए कितना उचित है।

हमें सही या गलत बताने के लिए कोई बाहर से नहीं आने वाला। यह सब हमें ही सोच कर अमल में लाना होगा। वरना आज हम अपने बुज़ुर्गों को वृद्धाश्रम में पहुंचाएंगे तो कल हमें भी वृद्धाश्रम में जाने के लिए तैयार रहना होगा क्योंकि आज हम अपने आने वाली पीढ़ी को यही शिक्षा दे रहे हैं। ज़ाहिर है पीढ़ी दर पीढ़ी यह दोहराई जाती रहेगी।

अगर हमें अपने समाज में पनप रहे इस विषय पर कल के लिए कोई प्रश्न चिन्ह नहीं छोड़ना है तो इस विषय पर पूर्णविराम लगाने का कार्य भी हमें ही आज से ही प्रारम्भ करना होगा।

अगर हम चाहते हैं कि हमारी आने वाली पीढ़ी की दीवार एक सशक्त और सुदृढ़ संस्कृति और संस्कारों की नींव पर खड़ी हो तो सबसे पहले हमें मानवीय मूल्यों को संरक्षित करना होगा, तभी हम सही मायने में कह सकते हैं कि हम परम्पराओं, संस्कृति एवं रीति-रिवाज़ों को फिर से जीवित करने के प्रयास में सही दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। मैं चन्द्रताल के माध्यम से न सिर्फ लाहुल-स्पिति के लोगों से बल्कि भारत के तमाम नागरिकों से आग्रह करना चाहता हूँ कि ऐसी स्थिति पैदा ही न होने दें कि हमें वृद्धाश्रम जैसे विषय पर बहस या परिचर्चा करने की ज़रूरत महसूस हो। ■

दरकते कराहते पहाड़ और जल विद्युत परियोजना

Courtesy: Hillpost

विनोद कुमार ठबाकु

हिमालय क्षेत्र को नदियों के रूप में प्रकृति का वरदान प्राप्त है। आज इन नदियों का अस्तित्व खतरे में है जिन के साथ हम अनंत काल से जुड़े हुए हैं। विकास और लालच के होड़ में नदियों पर बांध और सुरंग बनाए जा रहे हैं और शायद इस अंधी दौड़ में हम इतने अभिमानी व अतिविश्वासी हो गए हैं कि हम यह भूल चुके हैं कि नदी, पहाड़ और पर्यावरण से हमारा अस्तित्व है न कि हम से यह प्राकृतिक धरोहर। पहाड़ी नदियों पर जल विद्युत परियोजनाओं का बनना स्थानीय निवासियों के सीमित ज़मीन और भविष्य में जीवनयापन के लिए खतरनाक संकेत है।

जल विद्युत परियोजनाओं को केवल पूंजी लाने व आय के स्रोत के रूप में देखा जाता रहा है जिसमें इससे होने वाले लाभ को केन्द्र में रखकर स्थानीय लोगों की ज़रूरतों, उन पर दूरगामी प्रभाव और पर्यावरण पर इस के कुप्रभावों को नजरअंदाज़ कर दिया जाता है। इसका अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि किस तरह बिजली उत्पादन की संभावित क्षमता को वर्ष दर वर्ष वढ़ा कर दिखाया जाता है। यह संभवतः विकास का सतत विकास पर अतिक्रमण, लालच का पारिस्थिकीय कुशलता पर हावी होना हो सकता है ।

हिमालय क्षेत्र अतिसंवेदनशील व पारिस्थिकीय रूप से नाज़ुक श्रेणी में आता है। जल विद्युत परियोजनाओं में सड़क व सुरंग का निर्माण होता है जो कि 20-25 कि. मी. तक लंबी हो सकती है। इन सड़कों व सुरंगों के निर्माण में जो बारूदी बिस्फोट (ब्लास्टिंग) किया जाता है इससे इन संवेदनशील पहाड़ों पर दरारें पड़ती हैं, ज़मीन खिसकने व धंसने की संभावना बढ़ती है। साथ-साथ यह भी पाया गया है कि प्राकृतिक भूगर्भीय जलस्रोत सूख जाते हैं। नदी के ऊपर बांध द्वारा पानी को सुरंग से मोड़ दिया जाता है तथा एक के बाद एक परियोजनाओं के पारित होने से नदी के प्राकृतिक बहाव को देख पाना दुर्लभ हो गया है। यह स्थिति सतलुज नदी पर देखी जा सकती है। व्यवस्था यह होनी चाहिये कि जल विद्युत परियोजनाओं से प्राप्त लाभ का उचित हिस्सा स्थायी रूप से स्थानीय लोगों को मिले जिससे कि स्थानीय लोगों पर इन परियोजनाओं का असर आर्थिक रूप से कम किया जा सके जब कि वास्तविकता यह है कि स्थानीय लोगों के प्राकृतिक जल स्रोत, सड़क निर्माण, सुरंग निर्माण, अन्य इन्सानी गतिविधियों के कारण सूख गए हैं, खेतों व घर की दीवारों पर दरारें पड़ गई हैं साथ-साथ कुछ स्थान धंसने भी लगे हैं। किन्नौर की राजधानी रिकांगपियो इसका जीता जागता उदाहरण है।

सड़क व सुरंग निर्माण तथा नदी के बहाव को बदलने से प्राकृतिक जलस्रोत व चश्मे सूखने लगे हैं जिससे पीने का पानी, सिंचाई हेतु पानी की आपूर्ति करना मुश्किल साबित हो रहा है। साथ ही ज़मीन में नमी की कमी के कारण फसल व पेड़ पौधे बुरी तरह से प्रभावित हो रहे हैं। यदि इन परियोजनाओं को स्थानीय लोगों के जीवन से जोड़कर देखा जाए तो निश्चित रूप से यह घाटे का सौदा साबित होगा क्योंकि मुनाफा या तो निजी कम्पनियां उठा रही हैं या फिर सरकारी कम्पनियां।

भूस्खलन की घटनाएं प्रदेश में दिन व दिन बढ़ती जा रही हैं इस का ताज़ा उदाहरण मंडी-कुल्लू राष्ट्रीयमार्ग व जोगिन्दरनगर-मन्डी मार्ग पर भूस्खलन की घटनाए हैं। किन्नौर ज़िले में वनों की सघनता में कमी 2011 इंडिया स्टेट ऑफ फोरेस्ट रिपोर्ट में दर्शाया गया है। यही हाल चंद्रभागा नदी व स्थानीय पर्यावरण पर देखने को मिलेगा यदि दूसरे ज़िलों व प्रदेशों में चल रहे अति दोहन से समय रहते सबक नहीं लिया गया। अंततः आज की परिस्थिति में यही कहा जा सकता है कि बड़ी जल विद्युत परियोजनाएं किसी भी दृष्टिकोण से स्थानीय लोगों व स्थानीय पर्यावरण के हित में नहीं हैं। यह सभ्यता, संस्कृति एवं मानव विकास में नदियों के योगदान को अनदेखा कर विकराल स्थिति उत्पन्न कर देगा, जहां से वापिस लौटना बहुत मुश्किल होगा।

पद्मसम्भव

एम० आर० ठाकुर

किंवदन्ती अथवा आख्यान का इतिहास से गहरा रिश्ता है। इसी लिए यह कथन प्रसिद्ध है कि ''जब आख्यान पदार्पण करता है तो इतिहास समाप्त हो जाता है, परन्तु जब आख्यान और इतिहास का समंजन किया जाए तो इसका परिणाम सुन्दर और विश्वसनीय हो जाता है।'' यह कथन महान तन्त्राचार्य पद्मसम्भव के जीवन-वृत्तान्त पर खरा उतरता है। जिस तरह का जीवन-चरित उनका रहा है उससे यह निर्णय कर पाना असम्भव नहीं तो कठिन ज़रूर है कि क्या पद्मसम्भव ऐतिहासिक पुरुष हैं अथवा पौराणिक देव। भारतीय इतिहास और साहित्य उनके जीवन के बारे में विशेष जानकारी प्रदान नहीं करते, परन्तु तिब्बती ऐतिहासिक और साहित्यिक सन्दर्भों से उनके जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। तिब्बती विचारधारा उनको 'गुरु रिनपो-छे या दूसरा बुद्ध' मानती है।

तिब्बत के साहित्य और इतिहास में पद्मसम्भव का नाम पहली बार तब आता है जब तिब्बत के प्रसिद्ध राजा स्रोङ-ब्रचन-गम्पो द्वारा लगभग सन् 650 के आसपास बौद्ध-धर्म को राज्य-धर्म घोषित करने के बाद उसी क्रम में पांचवे राजा खी-स्रोङ-ल्दे-ब्रचन (755-797) ने बोन धर्म के मन्त्रियों के विरोध के बावजूद नालन्दा बिहार से बौद्ध-धर्म के महान आचार्य शान्तरक्षित को तिब्बत में बुलाया ताकि भारतीय बौद्ध-धर्म की शिक्षा तिब्बत के लोगों को दिलाई जाए, परन्तु बोन धर्म के सशक्त विरोध के फलस्वरूप शान्तरक्षित का काम सहज नहीं था। कुछ बोन धर्म के सुर, असुरों और दानवों के प्रभाव के कारण और प्रमुखतः प्राकृतिक आपदा के परिणामस्वरूप देश में आँधी, तूफान, महामारी और अकाल की परिस्थितियां व्याप्त हुईं। लोगों ने इसका मूल दोष शान्तरक्षित के बौद्ध-धर्म की शिक्षा पर आरोपित किया। शान्तरक्षित जानता था कि आदिमकालीन विचारधारा, जादू-टोना और मायाजाल के प्रभाव में रह रहे लोगों को केवल ऐन्द्रजालिक जोगी, मायावी साधक तथा तन्त्र-विद्या का विद्वान ही समझा सकता है, इस लिए उसने राजा को परामर्श दिया कि तन्त्र के महान ज्ञाता और विद्वान साधक पद्मसम्भव को उड्डयन से बुलाया जाए जो इन परिस्थितियों पर काबू पा लेगा। पद्मसम्भव राजधानी में पहुंचा और उसने अनेकों भूत, प्रेत, पिशाच मार डाले तथा शेष सुर, असुरों और स्थानीय दानवों को तन्त्र-विद्या की शक्ति से मगरो पर्वत पर एकत्रित किया तथा उन्हें यह शपथ दिलाई कि वे भविष्य में बौद्ध-धर्म की प्रतिरक्षा करेंगे जिसके बदले में भावी पूजा-पद्धति में उनकी कुछ सहभागिता बनाई रखी जाएगी।[1]

इन घटनाओं से दो धारणाएं सिद्ध हो जाती हैं - प्रथम यह कि राजा खी-स्रोङ-ल्दे-ब्रचन (उच्चारण ठ्रीसोंग-दे-चन), शान्तरक्षित और पद्मसम्भव समकालीन थे और पद्मसम्भव का समय ईसा की आठवीं सदी के प्रारम्भ से लेकर उत्तरार्ध के बीच रहा है। दूसरा यह कि तिब्बती बौद्ध-धर्म में स्थानीय देवताओं का समागम उनके साथ हुए पद्मसम्भव के समझौतों का परिणाम है।

पद्मसम्भव के जन्म के बारे में दो किंवदन्तियां प्रचलित हैं। प्रथम के अनुसार वे स्वयंभू थे तथा वे कमल से प्रसूत हुए हैं और इसी लिए उनका नाम पद्मसम्भव पड़ा। उन्हें उड्डयन के अंधे राजा इन्द्रबोधि ने दत्तक पुत्र के रूप में अपना लिया था। दूसरी किंवदन्ती के अनुसार पद्मसम्भव उड्डयन के राजा शुक्र तथा रानी जालीन्द्रा के गर्भ से साधारण मनुष्य की तरह पैदा हुए थे और जन्म लेते ही उनके शरीर पर पद्म और वज्र के चिन्ह विद्यमान थे। यह भी माना जाता है कि पद्मसम्भव का प्रादुर्भाव धनकोष नामक सरोवर से हुआ था। अनेक विद्वानों का विचार है कि यह सरोवर वर्तमान मण्डी ज़िला, हिमाचल प्रदेश की रिवालसर झील है जहां पद्मसम्भव पैदा हुए माने जाते हैं, और जिसे तिब्बती (भोटी) लोग 'पद्मछो' कहते हैं। पद्मसम्भव के जन्म-स्थान उड्डयन के बारे में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। तिब्बत निवासी इसे उर-ग्यान कहते हैं और इसे भारत के पूर्वी भाग में नहीं वरन् पश्चिम की ओर स्थित मानते हैं। इसी आधार पर टुची और स्नलग्रूव जैसे विद्वान, जिन्होंने हिमालय क्षेत्र के बौद्ध-धर्म पर विशेष शोध-कार्य किया है, इसे स्वात घाटी में मानते हैं जो अब अफगानिस्तान में है। इस सम्बन्ध में आर० सी० मजूमदार लिखते हैं कि ''उड्डयन सातवीं शताब्दी में भारत की पश्चिम सीमा पर बसे चार महत्त्वपूर्ण राज्यों में से एक था जिसमें स्वात, पंजोकरा, बजौर और बुनेर चार ज़िले थे जो इस समय अफगानिस्तान में है।[2] इसके विपरीत कुछ विद्वानों का विचार है कि पद्मसम्भव की प्रकृति-प्रवृति के अनुकूल उड्डयन की स्थिति वज्रयान वातावरण में ढूंढनी चाहिए न कि स्वात, कश्मीर, अफगानिस्तान में। ऐसे विद्वान उड्डयन को उड़ीसा अथवा ढाका में विक्रमपुर वज्रयोगिनी के निकट मानते हैं।

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर, विशेषतया जनजातीय क्षेत्रों में पद्मसम्भव से सम्बन्धित अनेक लोक-धारणाएं, लोक-विश्वास और किंवदन्तियां प्रचलित हैं। लाहुल-स्पिति ज़िला की पटन घाटी में चन्द्रभागा नदी के बायें किनारे के एक पत्थर के टीले पर रेफग (रस्-फग्) नामक गांव में त्रिलोकनाथ का मंदिर मूल रूप में शिव-त्रिलोकीनाथ का मंदिर था। आठवीं शताब्दी के मध्य में जब

पद्मसम्भव तिब्बत जाते हुए इधर से गुज़रे तो वे यहां की स्थलाकृति और प्राकृतिक सौंदर्य से बड़े प्रभावित हुए तथा उन्होंने छह भुजाओं वाली संगमरमर की भगवान अवलोकितेश्वर की मूर्ति स्थापित की। इसे विद्वान बोधिसत्व आर्य अवलोकेश्वर मानते हैं। मंदिर में पूजा आदि संस्कारों के आयोजन के लिए पद्मसम्भव ने एक लामा की भी नियुक्ति की थी जिसके वंशज आज भी बौद्ध-धर्म के अनुरूप पूजा-पाठ करते हैं। मंदिर के ऊपर के एक कमरे में एक बहुत बड़ा मने दुङ्ग्युर तथा परिक्रमा के लिए बनाए गलियारा में छोटे-छोटे मने-लाखोर स्थापित हैं जिन्हें यात्री हाथ से गति देकर चलाते रहते हैं।

यहां से केलंग, लेह (लद्दाख) चलते हुए कुछ दूरी पर चन्द्रा और भागा नदियों के संगम के निकट एक पहाड़ी पर गन्धोला नामक बौद्ध विहार है। इसे घण्डाड़ गोम्पा भी कहते हैं और यह गोम्पा भी पद्मसम्भव द्वारा स्थापित किया माना जाता है। विद्वानों का मत है कि त्रिलोकनाथ मंदिर में स्थापित अवलोकितेश्वर की मूर्ति और गन्धोला विहार में रखा हुआ लोकेश्वर का मस्तक एक ही शिल्पकार की कृतियां प्रतीत होती है।[3] यह गोम्पा किसी समय बहुत महत्त्वपूर्ण और गौरवशाली रहा है।

सन् 1857 में कुल्लू का एसिस्टेंट कमिश्नर 'मेजर हे' लाहुल-स्पिति का दौरा करते हुए गोन्धला में ठहरा था। उसे सूचना मिली कि वहां से कुछ ही दूर चन्द्र-भागा नदियों के संगम के निकट एक गुफा में से कुछ विशेष प्रकार का सामान बरामद हुआ है। मेजर हे तुरन्त वहां पहुंचा परन्तु तब तक अच्छा और कीमती सामान उठाया जा चुका था। मौके पर यह स्पष्ट हो गया कि यहां पहले एक बौद्ध-विहार था जो कभी भारी बाढ़ द्वारा दब चुका था। अब जो उस बार नया भू-स्खलन हुआ तो दबा-माल निकल आया। बचे सामान में से एक पीतल का लोटा था जिस पर उकेरी गई चित्रकारी ने मेजर हे को आकर्षित किया और इस समय यह विक्टोरिया एंड अल्बर्ट संग्रहालय में सुरक्षित है। लोटे के चित्र में बुद्ध के बचपन की, जब अभी उसने राज-महल, पत्नी और बच्चे को त्याग कर तप के लिए प्रस्थान नहीं किया था, अर्थात् राजकुमार सिद्धार्थ की रथयात्रा का विवरण है। राजकुमार रथ पर सवार है, जिसे चार घोड़े खींच रहे हैं। सारथि ने धोती पहनी है। चौंरी-धारक ने राजकुमार के सिर पर बायें हाथ से एक बड़ा छाता धारण किया है। रथ के पीछे एक-घुड़सवार तथा अन्त में हाथी की सवारी है। बाशम ने इसे ईसा की पहली-दूसरी शताब्दी का लोटा माना है।[4] परन्तु चार्लेस हार्न ने लोटे की चित्रकारी पर विस्तार से समीक्षात्मक विवेचन करते हुए इसे दूसरी और तीसरी शताब्दी के मध्यकाल का माना है।[5] यदि लोक-विश्वास को लोटे की ऐतिहासिक घटना के साथ जोड़ा जाए तो यह कहना गलत न होगा कि यह लोटा उसी गोम्पा का अवशेष है जो पद्मसम्भव ने स्थापित किया था। विद्वानों का यह भी मत है कि घण्डाड़ (गन्धोला) गोम्पा से पहले यहां हिन्दू मंदिर रहा होगा।[6]

यह स्थान डिलबुरी (ड्रिल्बुरी) पहाड़ी पर ऐसा स्थित है जहां बाढ़ तथा भूस्खलन प्रायः आते रहते हैं। इस लिए मंदिर अथवा गोम्पा प्रायः स्थापित होते और गिरते-दबते रहे हैं। अब भी यह कोई बहुत बड़ा गोम्पा नहीं है और न ही यहां कोई आबादी है, परन्तु गोम्पा होना ही इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि पुराने समय से लेकर यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, पद्मसम्भव इससे सम्बन्धित रहे हैं और किसी समय यहां घर-गांव आबादी भी रही होगी।

स्पिति नदी के अन्तिम छोर पर बायें किनारे किन्नौर ज़िला के नाको गांव में रिन-छेन-ज़ङ्पो के विश्वविख्यात बौद्ध विहार के साथ ही एक और ऐतिहासिक बौद्ध विहार है जो लोपोन-ल्हाखङ के नाम से प्रसिद्ध है। लोपोन से यहां आशय सिद्धाचार्य पद्मसम्भव से है। एक बड़ी चट्टान पर पद्मसम्भव के 'जब्स जेस' अर्थात् चरण-चिन्ह अंकित है और उसी चट्टान के ऊपर यह ल्हाखङ बनाया गया है। लोक-विश्वास के अनुसार जब आचार्य पद्मसम्भव इधर से गुज़रे तो उन्होंने इस चट्टान पर अपने चरण-चिन्ह स्थापित करके न केवल इस स्थान को पवित्र किया अपितु अपनी उपस्थिति को भी स्थायी बनाया। चरण-चिन्हांकित बड़ी शिला के साथ ही एक और छोटी शिला है जिस पर इस क्षेत्र के आदि रक्षक देवता पुरग्यल के हस्त-चिन्ह अंकित हैं। पुरग्यल को 'स-बृदग' अर्थात् भू-देवता भी कहते हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार पुरग्यल देवता की हस्तांकित चट्टान पहले साथ लगते पर्वत-शिखर पर स्थित थी तथा इसके दर्शन हेतु जाने के लिए भक्तों को काफी कठिनाई उठानी पड़ती थी। इस लिए किसी भक्त ने यह चट्टान उठा कर यहां लाई और पद्मसम्भव के चरण-चिन्ह के साथ ही स्थापित कर दी ताकि लोग दोनों पवित्र और महान शक्तियों की पूजा का लाभ उठा सकें। इन दोनों शिलाओं के गिर्द प्रदक्षिणा-पथ बना है तथा भक्त दोनों शिलाओं की परिक्रमा एक साथ करते हैं। लोपोन ल्हाखङ के अंदर पद्मसम्भव की मिट्टी की बनी एक मूर्ति भी स्थापित है। यहां का यह ल्हाखङ इस गांव की विश्व-विख्यात प्रकृतिक झील के किनारे पर बना है और कहा जाता है कि जिस भक्त पर पद्मसम्भव प्रसन्न हो उसे आचार्य पानी में छाया के रूप में दर्शन देते हैं। लोगों का विश्वास है कि तन्त्राचार्य पद्मसम्भव आकाशमार्ग से नाको में पहुंचे थे तथा उतरते समय इसी शिला पर उनके पैर पहली बार टिके थे।

प्राचीन समय में मण्डी का विस्तृत क्षेत्र ज़्होर कहलाता था और कश्मीर के सम्राट ललितादित्य मुक्तिपीड़ के साम्राज्य का भाग था जो बौद्ध-धर्म अनुयायी था। आज भी बौद्ध-मतावलम्बी रिवालसर को ज़्होर के रूप में पूण्य तीर्थ मानते हैं। इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक लोक-कथा सुनने को मिलती है।

कहते हैं कि मण्डी-ज़्होर के राजा आर्षधर की 360 रानियां थीं। इनमें से पटरानी हौकी के गर्भ से एक राजकुमारी का जन्म हुआ जिसके शरीर पर 32 विशेष लक्षण विद्यमान थे। उसका नाम मन्दारवा रखा गया। इन अद्‌भुत लक्षणों को देखते हुए योगियों ने भविष्यवाणी की कि राजकुमारी गृह-त्याग करेगी और योगिनी बनेगी। राजा को चिन्ता हुई परन्तु वह कुछ उपाय करने में लाचार था। जब राजकुमारी बड़ी हुई तो महान तन्त्राचार्य पद्मसम्भव को अपनी अन्तर्दृष्टि से यह अनुभव हो गया कि मन्दारवा के धर्मांतरण तथा बौद्ध-धर्म उपदेश का समय आ गया है। वे तुरन्त धनकोष सरोवर से बादल पर सवार हो कर राजकुमारी के पास पहुंचे। उस समय मन्दारवा अपनी सहेलियों के साथ उद्यान में विचरण कर रही थी। आकाश-मार्ग से उतरते हुए पद्मसम्भव के इस दृश्य से राजकुमारी और उसकी सहेलियां चकित हो गईं। राजकुमारी मन्दारवा उसके निकट गई और पूछा ''तुम कौन हो? कहां से और क्यों आए हो?'' पद्मसम्भव ने उत्तर दिया कि ''मैं धनकोष सरोवर के एक कमल से स्वयंभू उत्पन्न हुआ हूँ और मैं दूसरा बुद्ध हूँ तथा आदि-बुद्ध का सार-तत्त्व हूँ। मैं प्राणिजगत के कल्याणार्थ प्रकट हुआ हूँ।''

यह सुन कर मन्दारवा को लगा मानो कि यह उसकी आत्मा की पुकार का प्रतिफल है। वह गुरु के चरणों पर पड़ी और प्रार्थना की कि वे उसे दीक्षा दें। यह सुन कर गुरू रिनपोछे ने मन्दारवा को बुद्ध के प्रवचनों तथा योग-शिक्षा देना आरम्भ किया। वे दोनों प्रतिदिन उद्यान में पहुंचते और शिक्षा-दीक्षा आरम्भ करते। इस सारे घटनाक्रम को एक चरवाहा देख रहा था। एक सुन्दर बालक के साथ राजकुमारी के प्रतिदिन के मिलन से उसे राजकुमारी के चरित्र पर संदेह हुआ। उसने अफवाह फैलाई कि राजकुमारी चरित्रहीन है और एक नौजवान के साथ संदिग्ध रूप में रह रही है। राजा को जब इसका पता चला तो उसने युवक को जीवित जला देने का आदेश दिया। आदेशों के अनुसार राज्य भर के लोगों द्वारा एक-एक लकड़ी का बोझ इकट्ठा करके ढेर लगवा दिया गया। उसपर तिलों का तेल उंडेला गया और आग लगा कर युवक को जलती आग के अंवार में धकेल दिया गया। मंदारवा को भी निरवस्त्र करके एक गहरे गड्ढे में डाल दिया गया जिसे ऊपर से बंद कर दिया गया ताकि उसे नीला आकाश भी नज़र न आए।

सप्ताह भर चिता जलती रही। उससे निकलते धुएं ने आकाश और सूर्य को ढक दिया। आग बुझने का नाम नहीं ले रही थी। ज्वाला प्रतिदिन भयंकर रूप धारण कर रही थी। सभी यह दृश्य देख कर हैरान थे। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर राजा जब सातवें दिन उस स्थान पर पहुंचा तो यह देख कर सभी विस्मित हुए कि उस स्थान पर इन्द्रधनुष से घिरा एक विशाल सरोवर उभर आया है। सरोवर के मध्य एक कमल का फूल खिल रहा है तथा उसपर आठ वर्ष का सुन्दर बालक विराजमान है। यह चमत्कार देख कर राजा ने पश्चाताप किया तथा पद्मसम्भव को अतीत, वर्तमान और भविष्य का बुद्ध पहचान और मान कर उससे क्षमा मांगी। उधर

मन्दारवा भी गड्ढे में प्रसन्नचित सकुशल बैठी देखी गई। राजा ने राजकुमारी का विवाह पद्मसम्भव से करा दिया और साथ ही अपना सारा राज्य उन्हें सौंप दिया। कालान्तर में वह सरोवर रिवालसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सरोवर में सात छोटे चलते-फिरते भूखण्ड हैं। ये सात बौद्ध-देवताओं के प्रतीक हैं और बौद्ध-धर्मानुयायी इन्हें इसी रूप में पूजते हैं। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार जब जलती चिता में पद्मसम्भव को डाल दिया गया, तो गुरु को जलते देख कर मन्दारवा भी उसमें कूद गई थी। चिता के जल कर राख हो जाने पर वहां पद्मागेसर नाम का वृक्ष उग आया जिसकी एक शाखा पर गुरु पद्मसम्भव और दूसरी पर मन्दारवा बैठे एक-दूसरे की ओर देखते हुए मुस्करा रहे थे। चलते-फिरते भूखण्ड और उनपर उगी झाड़ियां पद्मागेसर वृक्ष के ही अंश हैं। प्रति वर्ष श्रावण मास में यहां भारी मेला लगता है जिसमें सभी धर्मों के लोग भाग लेते हैं। बौद्ध-धर्मावलंबी गोम्पे में प्रतिष्ठित पद्मसम्भव की प्रतिमा की पूजा करते हैं। मण्डी शहर में मन्दारवा का एक छोटा सा मंदिर है जिसे खुआरनी का मंदिर कहते हैं। मंदिर में स्थापित मूर्ति बौद्ध लोगों को आकर्षित करती रही है।[7]

यद्यपि विद्वानों में सहमति नहीं है कि क्या पद्मसम्भव लाहुल आए थे या नहीं, परन्तु स्थानीय अनुश्रुतियां और किंवदन्तियां इस तथ्य को पुष्ट करती हैं कि पद्मसम्भव लाहुल आए थे तथा वे कुल्लू के रास्ते से आए थे और उन्होंने कुछ पुस्तकें मनाली के आस-पास किसी गुफा में छुपा रखी हैं तथा गुफा-द्वार को तान्त्रिक विद्या की शक्ति से ऐसा बंद कर रखा है कि किसी को गुफा का न ज्ञान है, न ही उसे कोई खोल सकता है। तिब्बत से, आदि-काल से ले कर अनेक तिब्बती लामा, जो पद्मसम्भव के शिष्यों के वंशज रहे हैं, इस प्रयोजन से मनाली आते रहे हैं। ऐसा एक लामा कुल्लू के एसिस्टेण्ट-कमिश्नर मिस्टर हॉवल (1907-1910) के कुछ ही समय पूर्व मनाली आया था, परन्तु वह पुस्तकालय ढूंढने में सफल नहीं हुआ था। इस सम्बन्ध में मिस्टर हॉवल लिखता हैः-

''आज से बीस वर्ष से कुछ समय पहले एक भिक्षु लाहुल के स्वर्गीय ठाकुर हरि सिंह के नाम लिखे ल्हासा से अधिकार-पत्र लिख कर लाया था, और उसके पास मनाली में पुराने समय में स्थित एक बुद्धिस्ट विहार और मनाली का एक प्राचीन नक्शा भी था। उसने बताया कि जिस लामा के पास यह विहार था, उसे जल्दी में इसे छोड़ कर जाना पड़ा था और उसने अपना पुस्तकालय एक गुफा में बंद कर दिया था और दरवाज़े पर लकड़ी के शहतीर रख कर उसे मन्त्रों की शक्ति से बंद कर दिया था कि कुल्लू का कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति शहतीरों को खोल न सके। जब लामा मनाली पहुंचा तो वह सीधा मनाली मंदिर के सामने शहतीरों के ढेर के पास गया, परन्तु उसपर मन्त्रों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उन्हें छू भी न सका। यह रहस्य आज तक चला आ रहा है।[8]

हिस्ट्री ऑफ द पंजाब हिल स्टेट्स के लेखकों का कहना है कि ऐसी ही कथा मण्डी में रिवालसर झील के निकट छिपाई गई पुस्तकों के बारे में कही जाती है।[9] रिवालसर में पद्मसम्भव का आना तथा रहना ऐतिहासिक घटना बन चुकी है तथा वहां पुस्तकें गुरु पद्मसम्भव के अतिरिक्त कोई और नहीं रख सकता। कुल्लू-मनाली उस समय ज़्होर प्रदेश का एक अंग रहा है, यह तथ्य कुल्लू में प्रचलित एक लोकोक्ति से सिद्ध हो जाता है-

कोस्त नास्त ज़्होरा भनारा,
होंडदे फिरदे चोडू दिहाड़ा।

सम्भवतः ज़्होर किसी समय बहुत विस्तृत क्षेत्र रहा होगा जिसमें वर्तमान कुल्लू का क्षेत्र भी शामिल हो और इसमें कोस्त, नास्त, ज़्होरा, भनारा आदि बड़ी बस्तियां भी सम्मिलित थीं। नास्त प्राचीन कुल्लू की राजधानी थी। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्यूनत्सांग (सन् 629-645) कुल्लू (क्यू-लू-तो अर्थात् कुलूत) आया था और उसने यहां बौद्ध-धर्म की सराहनीय स्थिति का उल्लेख किया है जहां बीस संघाराम और एक हज़ार से अधिक भिक्षुओं के रहने का संकेत दिया है। प्रसिद्ध तन्त्राचार्य पद्मसम्भव इस क्षेत्र में आठवीं शताब्दी में आए हैं। इस लिए इस लोक-कथा में सच्चाई लगती है कि यहां मनाली का पुस्तकालय पद्मसम्भव द्वारा स्थापित तथा तन्त्र-शक्ति से आरक्षित छोड़ा गया है। ■

देवप्रस्थ भवन, ढालपुर कुल्लू।

---

1. Denzil Ibbetson- "Census Report for the Punjab 1882", para 251 and H.A. Rose, "A Glossary of the Tribe and Castes of the Punjab and North-West Frontier Province, 1883", Reprint Languages Department, Punjab, 1970, p-71.
2. R.R. Majumdar (Ed.)- A Comprehensive History of India, Vol. III, Part-I, Delhi 1981, p.-560.
3. के अंगरूप लाहुली - लाहुल स्पिति तथा किन्नौर में बौद्ध-विहारों के विविध रूप और उनका सांस्कृतिक योगदान; सोमसी पत्रिका, जुलाई 1976 अंक, पृ० 6-7
4. Basham, ए० एल ० - The Wonder That was India, Grove Press, Inc. New York, 1954, P. 374
5. Charles Harne- Notes on An Ancient Indian Vase, published in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland , New Series, Vol. 5, 1871, P. 367-375.
6. बलराम - लाहुल के मन्दिर और गोम्पे, सोमसी पत्रिका, अप्रैल, 1977 अंक, पृ० 32, 33.
7. डॉ० ओम चन्द हाण्डा - हिमाचल प्रदेश में बौद्ध परम्पराएं एवं स्थलः पुरातात्विक मूल्यांकन, सोमसी पत्रिका, जून-सितम्बर, 1996 अंक सं० 80-81, पृ० 18-19
8. G.C.L. Howell- Joumal of the Punjab Historical Society, Volume vi, No. 2, page 71.
9. J. Hutchison and J. Ph. Vogel- History of the Punjab Hill States, Volume II, 1933, Reprint by Deparment of Languages And Culture, H.P. Shimla, 1982, p. 450

स्पीति में हेपाटाइटिस की गंभीर समस्या

डॉ. जे.पी. नारायण

स्पीति कुछ अर्से से हेपटाइटिस बी की गंभीर समस्या से जूझ रहा है जिसके निदान के लिए अविलम्ब कार्यवाई की आवश्यकता है। शिमला के इन्दिरा गांधी मेडिकल कालेज (IGMC) के सर्वे के अनुसार लगभग 24% स्पीति निवासी हेपटाइटिस बी वाईरस से ग्रसित हैं। 2015 के इस सर्वे में 4231 लोगों के खून के सेम्पल में 963 (23.4%) हेपटाइटिस बी और 39 (0.9%) हेपटाइटिस सी पॉज़िटिव पाए गए। हालांकि इस सर्वे की प्रक्रिया या मेथडॉलॉजी के विषय में विस्तार से मालूम नहीं हो पाया है क्योंकि सर्वे रिपोर्ट का विवरण सर्वे वालों ने सांझा नहीं किया है। हेपटाइटिस बी की यह दर बहुत अधिक है और घोर चिन्ता का विषय भी! भारत में औसत दर 3-4% मात्र ही है।

इसमें दो राय नहीं है कि हेपटाइटिस बी एक गंभीर और जानलेवा संक्रामक रोग है। इससे लिवर को क्षति पहुंचती है और लिवर सिरोसिस और लिवर कैंसर के परिणाम स्वरूप मृत्यु भी हो सकती है। लेकिन इस रोग से बचने के लिए टीके उपलब्ध हैं और दवाइयों से वाइरस को नियंत्रण में रखा जा सकता है।

इस गंभीर समस्या से दो-चार होने के लिए और इसके उन्मूलन हेतु एक प्रोजेक्ट का प्रस्ताव 2016 में इस लेखक ने हिमाचल सरकार को भेजा था। लेकिन सरकार की तरफ से कोई सकारात्मक उत्तर नहीं मिला। हालांकि कई राष्ट्रीय स्तर की संस्थाएं जैसे भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICMR), ऐम्स (AIIMS) नई दिल्ली, पी जी आई चण्डीगढ़ (PGI) भी भागीदारी के इच्छुक थे। मुफ्त दवाई हेतू सिपला (Cipla) जैसी प्रसिद्ध कम्पनी से भी बातचीत चलाई थी।

हां यह खुशी की बात है कि सरकार ने लाहुल-स्पीति में सभी पांच साल की आयु के लोगों को टीका लगाने का अभियान शुरू किया है। इस अभियान में दो राउंड अक्तूबर-नवम्बर 2016 और नवम्बर-दिसम्बर 2016 में काज़ा और गोंधला में हो चुके हैं। मालूम हुआ है कि 18 हज़ार से अधिक लोगों ने इसका फायदा उठाया है। इसके बाद अप्रेल-मई 2017 में बूस्टर डोज़ का राउंड भी पूरा हुआ। इसके इलावा नवजात शिशुओं को रुटीन टीकाकरण के अधीन जन्म के समय बर्थ डोज़ भी दिया जा रहा है।

सूचित रहे कि हिमाचल के लिए एक बढ़िया मौका है यह दिखाने का कि देश से हेपटाईटिस बी की बीमारी का उन्मूलन किया जा सकता है। चीन ने इस पर काफी सफलता पा ली है और कुछ सालों में ही हेपटाईटिस बी की दर को अब देश भर में बहुत कम पर ले आए हैं (1992 में (.7% से घट कर 2014 में 0.3%) ! यहां तक कि उन लोगों ने अपने देश को जल्द ही हेपटाईटिस फ्री करने की ठान ली है।

अभी भारत इस मामले में बहुत पीछे है। और लाहुल-स्पीति में हेपटाईटिस उन्मूलन की सफल कोशिश देश के लिए उदाहरण बन सकती है और एक शुरुआत भी!

लेकिन इसके लिए आवश्यक होगा कि टीके सब बच्चों को लगे, यानि 100% या यूनिवर्सल कवरेज! बर्थ डोज़ बहुत महत्वपूर्ण है और उसके बाद के दो और टीके, जो 6 और 10 सप्ताह बाद दिए जाते हैं। जो व्यक्ति बीमार हों उन्हें ईलाज के लिए ऐंटिवाइरल दवाओं का प्रबन्ध भी आवश्यक है। इस अभियान का इम्पैक्ट या असर देखना भी बहुत ज़रूरी होगा और आशा है सरकार का ध्यान इस पर अवश्य होगा।

किडनी की खराबी और डायलिसिस

आज समूचे विश्व में किडनी या गुर्दे की बीमारी बहुत बढ़ रही है। कई ऐसे लोग हैं जिन्हें इस बीमारी के कारण डायलिसिस नियमित तौर पर करनी पड़ती है। भारत में ऐसे लोगों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। लाहुल-स्पीति और कुल्लू भी इससे अछूते नहीं रह गए हैं। भारत सरकार के अनुसार हर वर्ष 2.2 लाख और लोग बीमारों की सूची में जुड़ जाते हैं जिन्हें डायलिसिस की ज़रूरत पड़ती है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने अपने मन की बात कार्यक्रम में इस बात का उल्लेख किया और जानकारी दी कि भारत सरकार देश के प्रत्येक ज़िले में एक डायलिसिस सेंटर स्थापित करने जा रही है।

यह डायलिसिस क्या होता है? डायलिसिस (हिंदी में अपोहन) एक कृत्रिम विधि या प्रक्रिया है जो मनुष्य के रक्त से विषैले पदार्थ या गंदगी को साफ करता है। यह तब अपनाया जाता है जब किसी व्यक्ति के गुर्दे सही ढंग से काम नहीं कर रहे होते हैं या जो 90% से ऊपर खराब हो चुके हों। एक सामान्य व्यक्ति में किडनी या गुर्दे रक्त के फिल्टर या सफाई का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। वह मरीज़ जिनकी किडनी फेल हो गए हों, उन्हें या तो ट्रांस्प्लांट (प्रत्यारोपण)

की ज़रूरत पड़ती है या डायलिसिस की। अकसर डायलिसिस ही एक विकल्प रह जाता है क्योंकि प्रत्यारोपण की सुविधा बहुत कम को उपलब्ध है। और डायलिसिस उन्हें ज़िन्दगी भर अपनाना पड़ जाता है।

डायलिसिस दो प्रकार के हैं - एक जिसे हीमो डायलिसिस (hemodialysis) और दूसरा पेरीटोनियल डायलिसिस (peritoneal dialysis) हीमो डायलिसिस मशीन द्वारा किया जाता है जोकि किसी अस्पताल में ही किया जा सकता है लेकिन पेरीटोनियल डायलिसिस रोगी द्वारा घर बैठे किया जा सकता है और अस्पताल जाने की आवश्यकता नहीं होती। दुर्भाग्यवश डायलिसिस सुविधा अधिकतर ज़िला अस्पतालों में प्राप्त नहीं है। कुल्लू में भी इसकी अभी सुविधा नहीं है, केलंग की तो छोड़िए।

ईलाज से बचाव अच्छा

ये दोनों उपचार किडनी रोग में बहुत सक्षम हैं लेकिन अक्सर लोगों को यह जानकारी नहीं है कि रोकथाम (प्रिवेन्शन) द्वारा इस रोग से बचाव भी सम्भव है और आवश्यक भी। दरअसल, किडनी फेल के मुख्यतः दो कारण हैं- मधुमेह (डायबिटीज़) और उच्च रक्तचाप (हाई बीपी या हाइपरटेंशन) इन दोनों कारणों को अपनी रहन-सहन या स्वस्थ जीवन शैली से रोका जा सकता है। इनमें महत्वपूर्ण है अपने खान-पान में बदलाव अर्थात् नमक कम, चीनी कम, और डालडा (जिसमें खराब ट्रांस फैट या वसा होता है) से परहेज़ करना, नियमित व्यायाम करना, अपना वज़न घटाना या ठीक रखना, और तम्बाकू का सेवन बंद और शराब से दूर रहना इत्यादि। फलों और सब्ज़ियों का ज़्यादा मात्रा में प्रयोग, सुपरफाईन आटा या मैदा की जगह चक्की के पिसे आटे का इस्तेमाल करना भी फायदेमन्द रहता है। जो रोगी मधुमेह या बीपी का ईलाज या उपचार करवा रहे हों उन्हें डॉक्टर द्वारा बताई हुई अपनी दवाइयाँ नियमित तौर पर लेनी चाहिए।

ये सावधानियां दीर्घायु तक जीवन व्यतीत करने हेतु आवश्यक हैं। जिन्हें किडनी की एडवांस बीमारी हो गई है वह भी डायलिसिस की मदद से अपना जीवन ठीक से व्यतीत कर सकते हैं। रोगियों को खाने का ख्याल रखना, अपने डॉक्टर की सलाह मानना और बीच-बीच में खून की जांच भी करवाते रहना लाज़मी है।

आज के युग में जहां आयु सीमा या जीवन काल बढ़ रहा है और लोग ज़्यादा आयु तक जीते हैं, मनुष्य को स्वस्थ और रोगमुक्त जीवन व्यतीत करने के लिए अपनी जीवन शैली और रहन-सहन में परिवर्तन करना उतना ही आवश्यक हो जाता है। ऐसी कुछ आवश्यक सावधनियां बरतने और परहेज़ करने से मधुमेह, उच्च रक्तचाप, दिल की बीमारी, कैंसर, किडनी रोग जैसी चिरकालिक बीमारियों से हम स्वयं को दूर रख सकते हैं। ■

Grams: Topseed

TRADE MARK HST

L No. KLS-3

Hari Singh Thakur & Co.

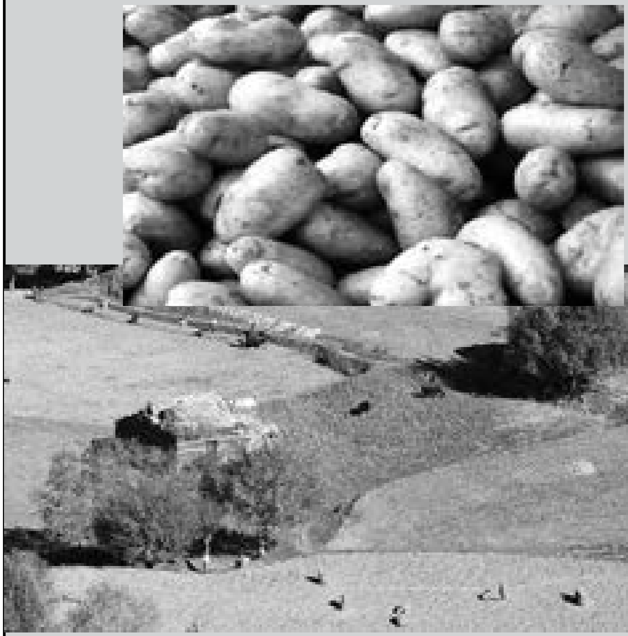

Seed Potato Suppliers, Apple Growers & Commission Agents

01902 252478 (Off)
01902 252347 (Res)
98160 22347
98160 32347
94184 12360

Manali-175131 Distt. Kullu HP

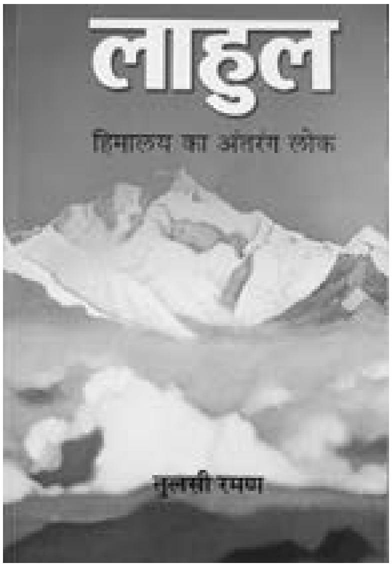

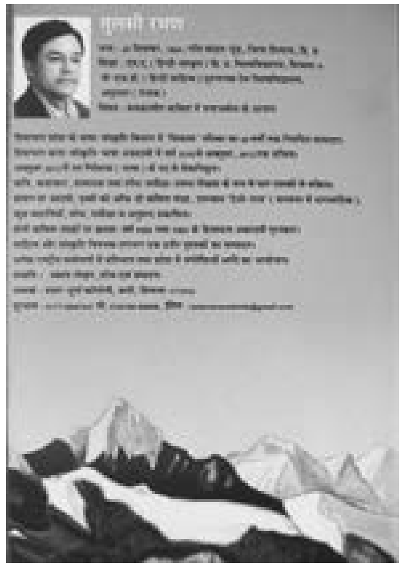

सत्य से तथ्य तक का सफर

तुलसी रमण की पुस्तक

प्रो० सत्यपाल सहगल

श्री तुलसी रमण ने अपनी जानदार कविता 'लाहुल पुराण' की रचना, लाहुल-स्पीति के ज़िला मुख्यालय केलंग में 1990 में की थी। 'लाहुल हिमालय का अंतरंग लोक' नामक उनका ग्रंथ 2016 में छपा है। दोनों कार्यों के अंतर-सूत्र कहीं-न-कहीं जुड़े हैं। यही इस शोध-कार्य की विशेषता है। अज्ञानी यूं ही काव्य और रिसर्च को दो विरोधी दिशाएँ मानते हैं। किसी विषय से रागात्मक लगाव का नाम है शायरी और उसी से तार्किक संबंध का नाम है विद्वत-लेखन। शायद, हिमाचल के परिदृश्य में ऐसे उदाहरण कम होंगे, जहां किसी ने दोनों को साधा हो। सिद्धहस्त कवि तुलसी रमण इसीलिए हमारे अभिनंदन के हकदार हैं। यह कितना दुखद है कि लोक पर लोक-भाषाओं में कम और अँग्रेज़ी जैसी जुबानों में अधिक लिखा गया है। संस्कृति-पुरातत्व-समाजशास्त्र का ज़रखेज़ इलाका लाहुल इसका उदाहरण है। तुलसी रमण ने इस कमी को पूरा करने की भरसक कोशिश की है। आने वाला समय इसको याद रखेगा।

यह ठीक है कि यह किताब किसी हद तक लाहुल की अतीत-रेखा की कहानी है, जिसके धूमिल पड़ने का खतरा हर कोई महसूस कर रहा है। इसलिए तुलसी रमण के प्रयास को उसे समय रहते बचाने और सँजोने का उपक्रम मानना चाहिए। एक रचना के रूप में यहाँ पहली बार लाहुलियों की नई पीढ़ी और बदलती जीवनशैली का आकलन भी है। चाहे संक्षिप्त। उसमें समस्याएँ हैं तो संभावनाएँ भी हैं। आती आर्थिक-समृद्धि का सकारात्मक उल्लेख है पर जीवन-मूल्यों और विरासत से जुड़ाव की कथा नकारात्मक है। निश्चय ही, सब उदाहरणों में ऐसा नहीं होगा। फिर जीवन परिवर्तनशील है, यह उदारता भी रखनी होगी। कुल्लू-मनाली-चंडीगढ़ में पसरा लाहुल, लाहुल का नया सच है और उससे आंखे बंद नहीं की जा सकती। लाहुल को शेष भारत से नियमित रूप से जोड़ने वाली निर्माणाधीन टनल की चर्चा भी यहाँ है। अनुमान यही है कि उसका बनना लाहुल के इतिहास में एक युगांतकारी घटना होगा। लाहुल संबंधी अध्ययन का यह नया क्षेत्र है। संतोष की बात है कि रमण की प्रस्तुति उसे छूती है। इसे भी उनके कार्य की एक उपलब्धि के तौर पर देखा जाना चाहिए।

यह बताना मौंज़ूँ है कि तुलसी रमण के गद्य-लेखन पर उनका कवि हावी नहीं है। बावजूद इसके, उसका असर कहीं कविता का सत्व लिए है; इस अर्थ में कि वे आपकी कल्पना और संवेदना को लाहुल के बीहड़ विगत में ले जाने में सफल होते हैं। पुष्ट-अपुष्ट ऐतिहासिक-पुरातात्विक तथ्यों के घटाटोप में, कई बार जिन पर एकाग्र होना भी मुश्किल हो जाता है, वे यह 'महसूस' करवाने में सफल हैं, कि लाहुल एक रहस्य ही नहीं, एक जटिल रहस्य है। यह संभवतः इसलिए भी हो पाया हो कि उनके पास अच्छी-खासी मिथक-कथाएँ हैं, इस पुस्तक को बुनने के लिए। खास कर रोहतांग को लेकर। लाहुल जैसे छोटे-से भूभाग में भी ये कहानियाँ असंख्य हैं और वे आपकी चेतना पर छा जाती हैं; जबकि तुलसी रमण उनकी व्याख्या आधुनिक बुद्धिवादी-रेशनलिस्ट, वैज्ञानिक कार्य-कारण पद्धति वाले तरीके से करने की कोशिश करते हैं। यह इस कृति की बड़ी खासियत और कहें तो विचारधारा है। हालांकि, ऐसा करते ही, वह स्वाभाविक आदिवासी-चेतना, पहचान-चेतना से थोड़ा बाहर की शख्सियत भी बन जाते हैं। जनजातीय संदर्भों में यह वह मूल द्वंद्व है, जिसका सामना 'बाहर' के हर प्रयास को करना पड़ता है। अपनी 'वास्तविकता' से आदिवासी का संबंध अनुभव का अधिक, तथाकथित 'तटस्थ' विश्लेषण का कम प्रतीत होता है। यद्यपि यह नहीं भूलना होगा कि

तुलसी रमण के अध्ययन-ढांचे के मूल में एक गहरा लगाव छिपा है, काव्य-तजुरबा पड़ा है। जिसका परिणाम है ये 212 पृष्ठ। अंततः इस कृति को काव्य-संवेदना से तथ्य-संकलन तक की एक यात्रा के तौर पर देखा जाना चाहिए, जिसे लेखक ने श्रम और निष्ठा से पूरा किया है। परिणाम मूल्यवान हैं। लाहुल संबंधी उनकी यह पुस्तक हिन्दी में इस तरह की पहली गतिविधि के तौर पर देखी जा सकती है, जहां लगभग सभी ज़रूरी और प्रधान सूचनाएँ करीने-से उपलब्ध हैं।

संभावित तौर पर इस बौद्धिक-सृजन के निम्न पाठक हो सकते हैंः हिमाचल के बाहर के, अर्थात मैदानी समाजों के वासी, जो लाहुल या आदिवासी समुदायों में किन्हीं कारणों से दिलचस्पी रखते हों और ऐसी सामग्री हिन्दी में चाहते हों या फिर हिन्दी में भी पढ़ने में रुचि रखते हों। उनके लिए यह सघन बौद्धिक-उद्यम काफी मुफीद साबित होगा; क्योंकि हिन्दी में फिलहाल ऐसा कोई उपक्रम फिलवक्त मौजूद नहीं है। चूंकि लेखक खुद हिमाचल से हैं, हिन्दी साहित्य का लेखक-अध्येता भी है, अतः यहाँ पाठक को कुछ ऐसा संस्पर्श मिलेगा, जो शायद और कहीं न मिले। मसलन, बीच-बीच में नामचीन हिन्दी लेखकों निर्मल वर्मा, केदारनाथ सिंह या कृष्ण नाथ के उद्धरण और चर्चा। या फिर अंत में कवि तुलसी रमण की लाहुल-स्मृति से जुड़ी कुछेक कविताएं और लाहुल की विभिन्न यात्राओं का वृतांत्त। पुस्तक-सरंचना के नज़रिये से यह कुछ अनोखा है- तुलसी रमण ने अपनी विषयवस्तु से निजी संबंध को सबसे आखिर में रखा है। यह एक तरह का संकोच ही कहा जाएगा, जबकि इस ग्रंथ-निर्माण का बीज व्यक्तिगत प्रेरणा में छिपा है।

दूसरी तरह के पाठक हिमाचल और अन्य पहाड़ी पृष्टभूमि के होंगे, जिन्हें पहाड़ के अंदर दूसरे गुह्य पहाड़ों की जिज्ञासा हो, जैसी कि कभी इस किताब के रचयिता को थी। पहाड़ी प्रदेशों के स्कूल-कालेजों और विश्व-विद्यालयों में इसे पाठ्य-पुस्तक के तौर पर भी प्रयोग किया जा सकता है। इसके तीसरे पाठक खुद लाहुली होंगे; यह देखते कि अँग्रेजी में लाहुल के बारे में कई किताबें होने पर भी, यह ग्रंथ जनभाषा हिन्दी में है और वही सर्वसाधारण के लिए ज़्यादा बोधगम्य है। इसके पाठ को लेकर उनकी प्रतिक्रियाएँ बहुत महत्वपूर्ण होंगी। पर लाख टके की बात है कि क्या सामान्य लाहुली, खासकर नयी पीढ़ी का, अपने अतीत और वर्तमान को खोजने को उत्सुक है? इसका उत्तर अन्वेषण का एक अलग विषय बन सकता है। अब समय आ गया है कि हिमाचल के आदिवासी समाज के वर्तमान और विशेषतः देश-विदेश में फैली समकालीन-आधुनिक-संगत के स्वभाव, सपनों, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं पर खुल कर और विस्तार से बात हो। तथापि, लाहुलियों के जवाब के साथ, यह तुलसी रमण के प्रयास की परीक्षा भी होगी कि वह लाहुली-पाठक को अपनी ओर निमंत्रित करने के 'निशाने' को बेधने की चुनौती में कितना सफल रहा है।

कुछ विद्वानों को लग सकता है कि बेहतर होता यदि तुलसी लाहुल पर राहुल सांकृत्यायन के काम से ज़्यादा वास्ता रखते। कुछ अन्य इस पुस्तक में लाहुल और लाहुलियों के नए समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और नवचेतना पर अधिक फोकस की मांग कर सकते हैं। जैसे लाहुल का आधुनिक राजनैतिक और प्रशासनिक इतिहास। इस तरह कुछ विशिष्ट लाहुली-व्यक्तित्वों और सामाजिक-नेताओं पर सामग्री हो सकती थी। संभवतः कुल्लू-मनाली में बस गए दूसरे लाहुल पर एक अलग अध्याय हो सकता था। लेखन-शैली को लेकर यह सुझाव भी दिया जा सकता है कि पुस्तक के नए संस्करण में पत्रकारिता के कुछ सद्गुणों का इस्तेमाल करके इसे गैर-अकादमिक पाठकों के लिए भी अधिक 'सुलभ' बनाया जा सकता है। लाहुली फोटोचित्र अधिक संख्या में हो सकते थे और अंत में कवि तुलसी रमण की अपनी कविताओं के साथ दो-एक लाहुली हिन्दी कवियों को भी जोड़ा जा सकता था। पुस्तक के बाहरी और भीतरी कवरों पर रूसी मूल के विश्वविख्यात चित्रकार रोरिख की पेंटिंगों का उपयोग बहुत सूझबूझ और प्रासंगिक काम है। शायद अधिक लोग न जानते हों कि इस महान कलाकार ने कुल्लू ज़िला के नग्गर में निवास के साथ एक स्टूडियो केलंग में भी बना छोड़ा था, जहां वह गर्मियों में जाकर, पेटिंग करता था। रमण के अनुसार, इस भवन के भग्नावशेषों के पुनर्निर्माण का काम चल रहा है। एक तस्वीर उसकी भी हो सकती थी। किताब के परिशिष्ट-दो में लाहुल के सांस्कृतिक शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या दी गयी है, जो पाठकों और शोधकर्ताओं के लिए बहुत उपयोगी और ज़रूरी संदर्भ है। नए संस्करणों में इसे और बढ़ाया-फैलाया जा सकता है और छोटे-मोटे कोश का रूप दिया जा सकता है। अपनी इस लंबी मेहनत से तैयार कृति से श्री रमण ने हिन्दी को अपूर्व रूप से समृद्ध किया है। स्पष्ट है इसका पठन-पाठन और इस पर विचार-विमर्श ही भविष्य में ऐसे और प्रयासों को प्रोत्साहित करेगा।

पुस्तक-नाम : लाहुल हिमालय का अंतरंग लोक

लेखक : तुलसी रमण

प्रकाशक : प्रज्ञान प्रकाशन,
दयार, दुर्गा कालोनी, ढली, शिमला-171012

पृष्ठ : 212

मूल्य पेपरबेक संस्करण : रुपये 295
जिल्द-संस्करण : रुपये 450

प्राप्ति-संपर्क : Facebook: Prajanan Prakashan

हिन्दी विभाग, पंजाब वि.वि. चण्डीगढ़।

चन्द्रताल का 29वां अंक

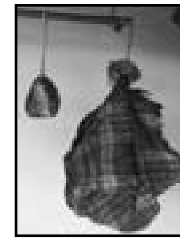

ञग: छे़रिङ

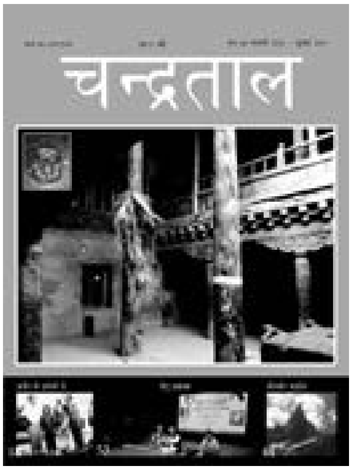

चन्द्रताल का अंक 29 मेरे हाथ में है। कुछ रचनाएं ध्यान खींचतीं हैं। मसलन यूसुफ की कविता - 'पहाड़ गूँगे नहीं हैं बोल पड़ेंगे एक दिन'। मैं इस उम्मीद से भरा-भरा हूँ कि कोई भी कविता निष्फल नहीं जाती। वह अपने वाईब्रेशंज़ चुपके से छोड़ ही जाती है। इस अच्छी कविता के लिए यूसुफ और चन्द्रताल का आभार। चन्द्रताल में कविता निरंतर ग्रो करे! आगे कंचन ठाकुर की कविता है, शेर सिंह मिरुपा की कविता के ठीक नीचे। भाषा शायद मंड्याली है। यह भाषा मुझे ठीक से नहीं आती, पर एक मौलिक प्रवाह इस कविता में है। और इस काव्यात्मकता का नोटिस लिया जाना चाहिए।

शिव चंद ठाकुर पर सतीश लोप्पा का आलेख ज़रूरी था। इस चर्चित राजनेता के जीवन से संबंधित कुछ अज्ञात तथ्यों व घटनाओं की जानकारी मिली और उन के व्यक्तित्व के कुछ नए पहलुओं से परिचय हुआ।

'कैता माया राम की आत्म हत्या' में रजवाड़ा शाही का आतंक व दबदबा समुचित तरीके से प्रस्तुत हुआ है। इस के संदर्भ अनायास ही समकालीन परिस्थितियों से जुड़ जाते हैं। इस घुरे को मैंने पहले कहीं नहीं सुना था। पहली बार मुझे अहसास हुआ कि गाथाओं को पढ़ने का ऐसा भी एक एंगल हो सकता है। सभी लोक गाथाओं को इस नई खिड़की से पढ़ने सुनने का मन हुआ है।

डॉ. टशी पल्जोर का आलेख विभिन्न बौद्ध संप्रदायों और दर्शनों के बारे महत्वपूर्ण जानकारी देता है। ऐसे लेख आम पाठक के लिए और भी सरल तरीके से लिखे जाने की ज़रूरत है। भविष्य में थेरवादी बौद्ध सम्प्रदाय और तांत्रिक बौद्ध सम्प्रदाय पर सीधे चर्चा भी हो सकती है ।

सुनीता कटोच का लाहुली स्त्री पर आलेख तथ्यपरक है, और बहुत मेहनत इस में दिख रही है। निरी व्यंग्योक्तियों और भावोच्छ्वासों के अलावा पर्याप्त विश्लेषणपरक सामग्री भी है और दृष्टि में संतुलन है। इसी तरह डॉ. राजेश ठाकुर ने वृद्धावस्था की समस्याओं पर व्यवहारिक और रीयलिस्टिक अप्रोच से लिखा है। चन्द्रताल में ऐसे लेखों का टोटा रहता है। इस क्षेत्र में आगे और भी सुधार दिखेगा, ऐसा विश्वास बनता है।

शेर सिंह शर्मा के काव्य संग्रह पर डॉ. उरसेम लता ने अच्छा और मोटिवेटिंग रिव्यू लिखा है। उन की और भी कविताएं चन्द्रताल में छापें। तोबदन जी की तीन किताबों पर ज़रा विस्तृत रिव्यू होना चाहिए था। आगे इस की आशा रहेगी। ठिन्ले नम्ज्ञल का छोद्पा पर विवराणात्मक लेख संग्रहणीय है।

कुल मिला कर के पत्रिका भले ही देर से आई हो, लेकिन इस का गेट अप, डिज़ाईन, प्रिंटिंग, बहुत ही लाजवाब बन पड़ा है। और उम्मीद है कि यह उत्तरोत्तर निखरेगा। किसी भी कमर्शियल वीकली या मंथली से कमतर नहीं है। प्रूफ की और छपाई की गलतियाँ न के बराबर हैं। पहल जैसी स्तरीय साहित्यिक पत्रिका में भी ये गलतियाँ आम तौर पर रह जाती हैं। ऐसा समुचित परिश्रम के कारण ही हो पाया है। भाई किशन बोक्टपा इस के लिए विषेष बधाई के पात्र हैं। इस बार पत्रिका का कवर भी सुंदर और मज़बूत है!

छेरिंग दोर्जे जी, तोबदन जी और लाल चंद ढिस्सा जी का कुछ न कुछ किसी न किसी अंक में अवश्य हो ऐसी मेरी (पाठकीय) आकांक्षा है। ये तीनों वरिष्ठ विद्वान लाहुली बौद्धिकों की पिछली पीढ़ी के विचार स्तम्भ हैं। समय रहते इन की कुछ ज़रूरी चीज़ें चन्द्रताल में दर्ज हो जानी चाहिए। खेद है कि नई पीढ़ी की सक्रियता केवल सोशल मीडिया तक ही सीमित है। वे प्रिंट मीडिया में कम दिखाई दे रहे हैं। इधर के कुछ वर्षों में हुआ यह है कि चन्द्रताल ने लेखन के स्तरीय मानदंड स्थापित किए हैं। लाहुल की युवतर पीढ़ी ने इसे चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। और वे चन्द्रताल में न सही, अन्यत्र अपनी पूर्ण प्रतिभा के साथ उपस्थित हुए हैं। इन में गज़ब की रचनात्मक ऊर्जा है और लेखन का कौशल भी। इसे मैं परोक्ष तरीके से चन्द्रताल की ही उपलब्धि मानता हूँ। ज़रूरत बस इन्हें चन्द्रताल से प्रत्यक्षतयः जोड़ने की है। इन में कुछ नाम हैं जो सोशल मीडिया में सिंसीयर और सीरियस लेखन करते हैं - विजय बौद्ध, विक्रम कटोच, विक्टर ढिस्सा, केसंग ठाकुर, शालिनी गड़फा, अभिषेक, ईशान मार्वल। इन युवाओं में महती रचनात्मक संभावनाएं हैं इन से सम्पर्क कर इन से लाहुल पर कुछ बेहतर आलेख व साहित्य लिखवाया जा सकता है। इसे मेरा सुझाव ही मानें। ■

कृष्णा ऑन केनवस

12 जनवरी 2018 से 14 जनवरी 2018 तक ढालपुर कुल्लू में भाषा, कला एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश सरकार (ज़िला कुल्लू/लाहुल-स्पीति) की ओर से सेव लाहुल-स्पीति नामक सोसाइटी के सहयोग से एक अनूठी कला संगोष्ठी का आयोजन किया गया। कृष्णा ऑन केनवस नामक इस तीन दिवसीय संगोष्ठी का मुख्य आकर्षण था लाहुल की युवा चित्रकार कृष्णा टशी पालमो की कलाकृतयों की एकल प्रदर्शनी। यह प्रदर्शनी 12 तथा 13 जनवरी को गौड़ निवास के हेरिटेज भवन की दीर्घाओं में रखी गई थी। युवा चित्रकार कृष्णा टशी पालमो लाहुल के शिपटिंग गांव की रहने वाली है। बचपन में ही पोलियो से लड़ते हुए उस ने अपनी टाँगें खो दी थीं और उसे बैसाखियों का सहारा लेना पड़ा। उसे विकलांग बच्चों के संस्थान में दाखिल करवाया गया, लेकिन वहाँ की व्यवस्था और कर्मचारियों का विकलांगों के प्रति रवैया उसे कतई पसंद नहीं आया। क्षुब्ध हो कर उस ने संस्थान छोड़ने का निर्णय ले लिया। इस तरह उस की पढ़ाई भी छूट गई। इन घटनाओं ने कृष्णा की संवेदना पर गहरा प्रभाव डाला। इस सब के बावजूद कृष्णा ने हार नहीं माना। उस ने घर पर ही रह कर अध्ययन जारी रखा और हिंदी तथा अंग्रेज़ी में सुंदर कविताएं लिखनी शुरू की। साथ में थंका पेंटिंग सीखने लगी। लेकिन उस ने अपनी कला को पारंपरिक प्रशिक्षण तक सीमित न रख कर नए प्रयोग करने का दुस्साहस किया तथा चित्रकला की विभिन्न विधाओं पर हाथ आज़माने लगी, और उस की कला में उत्तरोत्तर निखार आता गया। आज कृष्णा का क्लासिक बौद्ध चित्रकला थंका के साथ साथ लैंडस्केप, पोट्रेट और कंटेंपरेरी आर्ट पर भी बहुत ही गहरी पकड़ बन रही है।

कृष्णा इससे पहले भी 2016 में केलंग में ज़िला प्रशासन द्वारा आयोजित चित्रकला प्रदर्शनी में भाग ले चुकी है और इसी वर्ष जयपुर में आयोजित इंटरनेशनल आर्ट समिट में भाग ले चुकी है। लेकिन यह कृष्णा की पहली एकल पेंटिंग प्रदर्शनी थी। इस प्रदर्शनी में कृष्णा की 40 से अधिक पेंटिंग्ज़ रखी गईं थीं जिन में से कुल नौ मूल पेंटिंग्ज़ बिकीं और शेष पेंटिंग्ज़ के सैंकड़ों प्रिंट्स बिके। किसी भी नवोदित कलाकार के लिए यह काफी उत्साहवर्द्धक संख्या कही जाएगी।

14 जनवरी को लाहुल-स्पिति के कलाकारों की संयुक्त प्रदर्शनी लगाई गई। इस दिन देश के अलग-अलग हिस्सों में रह रहे लाहुल-स्पिति के 17 युवा कलाकारों ने भाग लिया। इन के नाम हैं- मेघा रोक्पा, सुरेश सोनी, अनुपमा रावल, शीतल बोध, प्रियंका बोध, सूरी शौंडा, अशोक बोध, इरिना मासूम, यूसुफ, सोनम अंगचुग, भुवांशु नलवा, संजीव रोल्बा, बिट्टू ठाकुर, रिया लोन्चेनपा, शेरिक तथा किशन ठाकुर। रोहताँग बंद होने कारण लाहुल में रह रहे कलाकार भाग नहीं ले पाए। इस दिन ऑन द स्पॉट पेंटिंग वर्कशॉप भी हुआ और छोटे बच्चों को टेकनीक तथा क्राफ्ट संबंधी टिप्स दिए गए। संगोष्ठी के अंत में उन्हें पारितोषिक भी वितरित किए गए।

इस आयोजन की खासियत यह रही कि इसी स्थान पर 12 से 14 जनवरी तक हर दोपहर 3:00 से शाम 5:00 बजे तक चित्रकला पर अनौपचारिक परिचर्चाओं के विशेष सत्र रखे गए। इस दौरान नई और पुरानी पीढ़ी के कलाकारों और कला प्रेमियों ने परस्पर अपने अनुभव सांझा किए। कृष्णा के कला कर्म पर वक्तव्य दिए एवम पर्चे पढ़े, तथा लाहुल में चित्रकला के समकालीन परिदृश्य पर अपने विचार व्यक्त किए। मुख्य वक्ताओं के रूप में वयोवृद्ध हिमालयविद विद्वान छेरिङ दोर्जे ने लाहुल-स्पीति में प्रागैतिहासिक गुफा/ चट्टान रेखांकन से ले कर क्लासिक थंका परम्परा तक की विकास यात्रा का रोचक इतिवृत्त सुनाया। वरिष्ठ लेखक तोबदन ने कृष्णा को आशीर्वाद और शुभकामनाएं देते हुए कहा कि नवाचार और एक्स्पेरिमेंटेशन की अपनी अलग महत्ता है, लेकिन यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि किसी एक थीम या विषय और विधा पर मास्टरी हो। उसी से कलाकार की पहचान बनती है। मयाड़ घाटी के बहुचर्चित थंका कलाकार श्रद्धेय लामा तंज़िन छुल्ट्रिम खिंगोपा ने थंका शैली की नियमबद्धता, अनुशासन तथा आध्यात्मिकता को रेखांकित करते हुए इसे मानव सभ्यता के परिष्कार में हिमालयी संस्कृति का अभूतपूर्व योगदान बताया। वरिष्ठ कला प्रेमी रणवीर शाशनी ने लाहुल (पटन) की लोक कला 'बराज़ा' लेखन पर लम्बा शोधपत्र पढ़ा जिस पर गम्भीर व रोचक बहस हुई। इस के अलावा नई पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में, कला विशेषज्ञ बलदेव घरसंगी ने विश्व में कला आंदोलनों के इतिहास की जानकारी देता एक खास पॉवर प्वाईंट प्रेसेंटेशन प्रस्तुत किया। कवि-कलाकार कृष्णा ठाकुर ने पारंपरिक थंका कला की सीमाओं को रेखांकित करते हुए कहा कि यह लगभग मेकेनाईज़्ड उत्पादन की तरह हो जाता है इस में सृजन अपने मौलिक उद्देश्य से ही च्युत हो जाता है। उन्होंने कहा कि इस के विपरीत मॉडर्न पेंटिंग में रंगो और रूपों से खेलने की छूट व आज़ादी है। चर्चित मॉडर्न आर्टिस्ट सूरी शौंडा ने समकालीन चित्रकला में सामूहिक चेतना (कलेक्टिव कांशसनेस) पर सारगर्भित टिप्पणी की, युवा कला अध्येता विजय व्यास ने थंका परम्परा के इतिहास और उस के तकनीकी पहलुओं पर विस्तृत एवम ज्ञानवर्द्धक शोध पत्र पढ़ा, तथा इस तरह के शोध और अध्ययन के लिए भोटी लिपि एवं तिब्बती भाषा का ज्ञान अनिवार्य बताया। कृष्णा के कला कर्म पर संजीव रोल्बा की आलोचनात्मक टिप्पणी को कलाकार मेघा रोक्पा ने पढ़ कर सुनाया। अपने अनुभव शेयर करते हुए फोकस आर्टिस्ट कृष्णा टशी पालमो ने बताया कि उसे अपनी छोटी सी ज़िंदगी में कुछ 'आई ओपनिंग एक्स्पीरिएंसेज़' हुए, और पाया कि आज की तारीख में कला अपने कलाकार को पाल नहीं सकती। अतः उस ने निर्णय लिया है कि वह खुद अपनी कला को पालेगी, प्रोमोट करेगी।

हर सत्र में खुली चर्चा के दौरान युवतर कलाकारों को अपनी बात रखने तथा प्रश्न पूछने का अवसर दिया गया। चूँकि आदतन आम लाहुली बहुत एक्स्प्रेसिव और वोकल नहीं है, अतः युवाओं से बहुत कम प्रश्न आए। लेकिन अनुभवी बुद्धिजीवियों की चर्चा उन्होंने बड़े चाव से और ध्यानपूर्वक सुनी। कुल्लू जैसे छोटे और उभरते हुए शहर में यह अपनी तरह का पहला प्रयोग था, और कस्बे की जनसंख्या के अनुपात में दर्शकों की संख्या खासी उत्साहवर्द्धक, बल्कि आशातीत थी। इस पूरे आयोजन में लाहुल-स्पिति की नई व पुरानी पीढ़ी के कलाकारों में परस्पर सम्वाद स्थापित करने का प्रयास किया गया। इस तीन दिवसीय संगोष्ठी का उद्देश्य कृष्णा टशी पालमो के बहाने समस्त युवा कलाकारों को प्रोमोट करना तथा पुरानी पीढ़ी को पुनर्संवेदित करना था। इस आयोजन को अमली जामा पहनाने में सुनीता कटोच, यूसुफ, सुरेश कुमार हड़कू, पद्मा ठिल्ले, बिट्टू तिबोग्पा तथा उन के पत्रकार मित्रों ने रात दिन एक कर के मेहनत की। इस दौरान गौड़ निवास में ऊर्जावान सामाजिक कार्यकर्ता सोनम छेरिङ उरज्ञनजी ने अपनी टीम के साथ आगंतुकों की सेवा में स्वादिष्ट लाहुली व्यंजन प्रस्तुत किए।

इस आयोजन की एक सीमा यह थी कि यह लगभग लाहुली लोगों का, लाहुली लोगों के लिए, लाहुलियत से लबालब ईवेंट बन कर रह गया। एकाध कलाकार या कला मर्मज्ञ / आर्ट क्रिटिक बाहर से भी होते तो एक्स्पोजर की नई खिड़कियाँ खुलतीं। बहरहाल, ऐसे ईवेंट भविष्य में होते रहेंगे और इंशाअल्लाह बहुत सारी इम्प्रोवाईज़ेशन के साथ! ■

अजेय